नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 2 • अंक 9
अक्टूबर, 2000 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

डीजल, पेट्रोल, किरासन और रसोई गैस के दामों में भारी बढ़ोत्तरी

परजीवी जमातों की विलासिता का बोझ मेहनतकश जनता क्यों उठाये?

सम्पादकीय अग्रलेख

लखनऊ ! 'करे कोई, भरे कोई'। तेल और रसोई गैस की कीमतों में बढ़ोत्तरी के मामले में यह कहावत पूरी तरह लागू होती है। तेल के अन्तराष्ट्रीय बाजार में बढ़ी कीमतों से पैदा हुए तेल पूल के घाटे की भरपाई देश की मेहनतकश जनता भला क्यों करे? इस घाटे के लिए वह तो जिम्मेदार नहीं ! जिम्मेदार तो बाजार और मुनाफे पर टिकी देश की व्यवस्था और उसे चलाने वाली सरकारें खुद हैं। प्राकृतिक सम्पदा और श्रम सम्पदा के मामले मे सौभाग्यशाली हमारा देश अगर आज तक तेल और ऊर्जा के मामले में अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाया तो इसके लिए पूरी तरह देश के शासक जिम्मेदार हैं। अपनी जिम्मेदारी जनता पर थोपकर चाबुक फटकारने की मनबढ़ई का ही नतीजा है तेल कीमतों में बढ़ोत्तरी।

तेल पूल का घाटा किरासन जलाने वालों और रसोई गैस के लिए लाइन लगाने वालों की वजह से नहीं हुआ है। यह उस जमात की बदौलत है जो कपड़ों की तरह कार और मोटर साइकिलें बदल रहा है। यह मंत्रियों अफसरों–सेठियों के हवाई सैर–सपाटों की बदौलत है। यह उस परजीवी जमात की बदौलत है जो प्रकृति और समाज की हर सम्पदा को भकोसना–लीलना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान चुका है। इनकी विलासिता रोमन साम्राज्य के कुलीनों को भी पीछे छोड़ चुकी है। आखिर यह जमात भी तो बाजार और मुनाफे की व्यवस्था की ही पैदावार है। सरकारी नीतियों की ही देन है।

यदि पेट्रोलियम उत्पादों के बेलगाम निजी उपभोग पर ही काबू पा लिया जाए तो मौजूदा तेल संकट से मौजूदा उत्पादन के स्तर पर भी निपटा जा सकता है। लेकिन, तब दुपहिया–चौपहिया वाहनों के कारखाना मालिकों का क्या होगा? कारखाना बन्द कर तेल बेचने का धन्धा तो वे करेंगे नहीं। आखिर जब कारें–मोटर साइकिलें नहीं खरीदी जायेंगी तो फिर तेल खरीदेगा कौन? बाजार और मुनाफे पर टिकी अर्थव्यवस्था की यही मजबूरी है। उत्पादन और उपभोग में किसी नियंत्रण और अनुशासन से उसकी सांस रुक जाती है। यही मजबूरी उपभोग को बेलगाम बनाती है और इस पर टिकी हुई जीवन शैली को बढ़ावा देती है। बाजार और मुनाफे का यही बुनियादी तर्क प्रकृति के बेलगाम दोहन को बढ़ावा देता है और पर्यावरण सम्बन्धी तमाम संकटों को बुलावा देता है।

पिछले दस वर्षों में जब से अर्थव्यवस्था का बाजारीकरण शुरु हुआ है, पेट्रोलियम उत्पादों का निजी उपभोग कितनी तेज रफ्तार से बढ़ा है, इसका अन्दाजा इन आंकड़ों से लगाया जा सकता है। 1990–91 में भारत में कारों की कुल संख्या 2266506 थी जो 1996–97 में बढ़कर 35 लाख से कुछ ज्यादा हो गयी और एक मोटे अनुमान के अनुसार इस समय यह संख्या 45 लाख के आसपास पहुंच चुकी है। यानी, पिछले दस वर्षों में कारों की संख्या दुगनी से कुछ ज्यादा हो चुकी है। दुपहिया वाहनों की बढ़ोत्तरी की रफ्तार इससे कहीं ज्यादा है। इसके विपरीत सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था इन्हीं दस वर्षों में लगभग ध्वस्त होने के कगार पर पहुंचती जा रही है। कारों की तुलना में बसों की संख्या में वृद्धि की रफ्तार बेहद कम है। 1996–97 तक स्थिति यह पहुंच चुकी थी कि पूरे देश में बसों–ट्रकों की कुल संख्या के मुकाबले कारों की संख्या 53.5 प्रतिशत ज्यादा हो चुकी थी।

नये–नये माडल की कारों और दुपहिया वाहनों को खरीदने के लिए ललचाऊ विज्ञापन श्रंखलाओं के अतिरिक्त सरकार ने अनेक तरह के ऋण देकर और किसिम–किसिम की पॉलिसियों के जरिये औसत मध्यम वर्ग की भारी आबादी को कारों–दुपहिया

शेष पेज 5 पर.....

सूचना प्रौद्योगिकी का मिथक और आम जनजीवन का यथार्थ

भारत का प्रधानमंत्री जिस समय वाशिंगटन के महाबली के दरबार में कोर्निश बजा रहा था और अमेरिकी धनकुबेरों को खुश करने के लिए अपनी मण्डली सहित भांति–भांति के नृत्य प्रस्तुत

बिल गेट्स से मिलकर प्रमुदित हुए मुख्यमंत्री गण

कर रहा था, उसी समय कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के स्वर्गाधिपति बिल गेट्स के दर्शन के लिए दिल्ली में देश के विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री कतार लगाये बेताब खड़े थे। यही नहीं महामहिम 'बिग बिल' से मिलने के लिए केन्द्र के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री प्रमोद महाजन अपनी अमेरिका यात्रा बीच में ही छोड़कर आ गये थे।

यूं तो जो लोग देश के सभी राज्यों का नाम नहीं बता सकते, वे लोग भी "सूचना प्रस्फोट" के जादू के चलते यह जानते हैं कि बिल गेट्स कम्प्यूटर साफ्टवेयर की सबसे बड़ी कम्पनी

शेष पेज 12 पर.....

भीतर के पृष्ठों पर

चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग – आठ) 6

मजदूरों की गैरकानूनी लूट का बाजार बनी लुधियाना की स्टील फैक्टरियां 3

एक बार फिर उठेगा काम के घंटों एवं वाजिब मजदूरी का सवाल 2

पार्टी के बोल्शेविकीकरण की बुनियादी शर्त – स्तालिन 4

आधुनिक दास–यात्रा, पुंजीवादी दास–यात्रा की एक और लोमहर्षक मिसाल 5

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी – गोर्की 10

संघ परिवार के कई मुंह और भाजपा की बदली-बदली बातें: दुविधा, अंतरविरोध या सोची-समझी रणनीति?

मुकुल श्रीवास्तव

संघ परिवार जब अपने कई मुंहों से कई बात बोलता है तो दिग्भ्रमित होने के लिए हरदम तैयार बैठा बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा एक बार फिर विभ्रम में पड़ जाता है। कभी उन्हें लगता है कि अटल बिहारी बाजपेयी अधिक उदारवादी मार्ग अपना रहे हैं और संघ उनसे रुष्ट है। कभी लगता है कि बाजपेयी की आर्थिक नीतियों के विरुद्ध स्वदेशी जागरण मंच संघर्ष का बिगुल फूंक रहा है। कभी लगता है कि भाजपा बाजपेयी के नेतृत्व में दलितों और मुसलमानों को अपनी ओर खींचने के लिए संघ परिवार के हिन्दू कट्टरपंथी घटकों से अलग राह पकड़ रहा है।

ये बुद्धिजीवी 'कन्फ्यूज़' होते रहते हैं और संघ परिवार का रथ पूर्ववत् एक ही दिशा में चलता रहता है, भले ही उसके रथीगण अलग–अलग बातें बोलते रहें।

ग़ौर से देखने पर पता चलता है कि यह संघ परिवार की पुरानी और सोची–समझी रणनीति है। यूं इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उदारीरण की दौर की बदली राजनीतिक परिस्थितियों के साथ समायोजन ने संघ परिवार में भी कुछ अन्तरविरोधों को जन्म दिया है तथा सत्ता चलाने और शासक वर्गों के हितों के अनुकूल आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन तथा कट्टर हिन्दूवादी पुनरुत्थानवादी परियोजना के बीच तनाव के विभिन्न संस्तर मौजूद हैं लेकिन मूल और मुख्य बात यह है कि पूंजीपति वर्ग ने उदारीकरण– निजीकरण की नीतियों पर अमल के दूसरे दौर के लिए फासिस्ट संघ और फासिस्ट रीति–नीति की पार्टी–भाजपा को ही सर्वाधिक अनुकूल माना। यह पार्टी कट्टरपंथी हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता की नीतियों के साथ नेहरूवादी "समाजवाद" (वस्तुतः राजकीय इजारेदार पूंजीवाद) के विरोध और पश्चिम परस्ती की नीतियों का शुरु

शेष पेज 4 पर.....

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग !

एक बार फिर उठेगा काम के घंटों एवं वाजिब मज़दूरी का सवाल

'आठ घंटे ड्यूटी और चार घंटे "ओवर टाइम"'

'यानी रोज 12 घंटे ड्यूटी?'

'हां 1200 रुपया मिलेगा "ओवर टाइम" मिलाकर 1600-1800 रुपया पड़ेगा, संडे ड्यूटी है। छुट्टी करेगा तो पैसा कट जायेगा।' – फैक्ट्री के मालिक ने कहा।

'लेकिन मैं तो आठ घंटे ही ड्यूटी करना चाहता हूं' – मज़दूर ने कहा।

मालिक हंसा, ... 'अरे! पागल हो गया है। आठ घंटे ड्यूटी करके क्या खायेगा, क्या बचायेगा।'

यही हाल कमोबेश दिल्ली के आस-पास की सभी औद्योगिक इकाइयों की है। यदि आपने कभी काम की तलाश में नोएडा, साहिबाबाद, शाहदरा या ओखला आदि के फैक्ट्रियों का चक्कर लगाया होगा तो आपने भी इस वाद-संवाद को देखा, सुना या स्वयं किया होगा। आपको इन क्षेत्रों में मुश्किल से ही कोई फैक्ट्री मिलेगी, जहां काम के घंटे आठ हों। दिल्ली से लगा यह पूरा औद्योगिक क्षेत्र छोटी-बड़ी कम्पनियों से भरा पड़ा है। यहां पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ ही राष्ट्रीय छोटी-बड़ी कम्पनियां भी हैं। यानी यहां देशी-विदेशी दोनो पूंजीपति वर्ग मौजूद हैं। जहां पर 10 से लेकर 100-200 और अधिकतम हजारों की तादाद में भी मज़दूर काम करते हैं। छोटी कम्पनियां ज्यादातर बड़ी कम्पनियों के लिए ही किसी विशेष उत्पाद, पार्ट या शीशी, लेवल, पैकिंग आदि का उत्पादन करती हैं। ये नामी-गिरामी कम्पनियों के लिए पीस रेट या कान्ट्रेक्ट पर उत्पादन करती हैं। आज मज़दूरों की भारी आबादी इन्हीं छोटी-छोटी फैक्ट्रियों में खट रही हैं। बड़ी कम्पनियों ने अपने उद्योगों में कम से कम अपने मज़दूर रखने तथा ज्यादा से ज्यादा कार्य ठेकेदारी या कान्ट्रेक्ट पर करवाने की नीति अपना रखी है। इन सभी छोटी-बड़ी कम्पनियों में कार्य दिवस बारह घंटे का ही होता है, और मज़दूरी मात्र 1200 से 1600 होती है। और हद तो तब हो जाती है जब मज़दूरों को लगातार 24 घंटे तक काम करने के लिए बाध्य किया जाता है। ऐसे में सवाल यह उठता है कि क्या सारे मज़दूर स्वयं 12 घंटे काम करना चाहते हैं या उन्हें ऐसा करने पर मजबूर किया जा रहा है।

पहली बात तो यह है कि कुछ एक अपवादों को छोड़कर किसी भी कम्पनी में न्यूनतम वेतन का मानदण्ड लागू नहीं है। आज न्यूनतम मज़दूरी से अधिक को कौन कहे वह मज़दूरी भी नहीं दी जाती है जो पूंजीपतियों की "मैनेजिंग कमेटी" यानी सरकार द्वारा न्यूनतम तय कर दी गयी है। वह भी नहीं के बराबर है और जिन्दा रहने भर के लिए पर्याप्त नहीं है। आज न्यूनतम मज़दूरी 90.30 रुपये प्रतिदिन तथा 2348 रुपये मासिक से कम नहीं होना चाहिए। जबकि सच्चाई यह है कि इस पूरे क्षेत्र की ज्यादातर फैक्ट्रियों में न्यूनतम मज़दूरी का आधा भी नहीं दिया जा रहा है। दूसरी तरफ दिनों रात बढ़ती मंहगाई से जिन्दा रहना भी काफी मुश्किल होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में देश के दूर-दराज से रोजी-रोटी की तलाश में आये मज़दूर के सामने इस परिस्थिति में इसके सिवा कोई रास्ता नहीं बचता कि वह मात्र अपना पेट पालने के लिए पूंजीपति वर्ग के एकतरफा अमानवीय शर्तों पर उसके लिए अपनी हड्डियां गलाये।

दूसरी तरफ चार घंटे "ओवर टाइम" की शर्त मज़दूरों से बेगार लेने जैसा ही अमानवीय कृत्य है। क्योंकि ओवर टाइम का मतलब होता है दैनिक मज़दूरी से दूने रेट पर प्रति घंटा की दर से भुगतान। जो किसी भी कम्पनी द्वारा नहीं दिया जाता है। इससे पूंजीपति को दो फायदे होते हैं, पहला – उसे तीन शिफ्ट के बजाय दो ही शिफ्ट में काम हो जाने पर तीसरे शिफ्ट के लिए मज़दूर नहीं रखना पड़ता। दूसरे – उसे ओवर टाइम तो देना नहीं पड़ता (जो कि ड्यूटी रेट से दूना होता है) वरन 12-12 घंटे की मज़दूरी ही देनी पड़ती है। अत: उसके द्वारा दिया जाने वाला "ओवर टाइम" वास्तव में ओवर टाइम है ही नहीं, वह केवल काम के घंटे में जबरन जोड़ा गया अतिरिक्त 4 घंटे का श्रमकाल है।

12 घंटे का कार्यदिवस कितना अमानवीय होता है इसकी जांच-पड़ताल की जाय तो हम पाते हैं कि 12 घंटे खटने वाले मज़दूर को सुबह उठकर सीधे काम में जुट जाना होता है तथा सुबह-शाम 2-2 घंटे ड्यूटी के पहले तथा ड्यूटी के बाद खाने-पीने के इन्तजाम एवं दिनचर्या के लिए निकल जाते हैं। यानी लगातार 16 घंटे रोज प्रत्येक मज़दूर का समय मात्र पूंजीपति की ड्यूटी एवं उसकी तैयारी में व्यतीत होता है। और यही सिलसिला यदि महीनों-सालों चलता रहे तो एक मज़दूर मज़दूर न रहकर यन्त्र बन जाये इसमें ताज्जुब नहीं। ऐसे में **क्या यह सच नहीं है कि इस कथित आजाद भारत में आधे से भी अधिक लोग सिर्फ पूंजीपति वर्ग के गुलामी में अपने समय का दो तिहाई भाग लगाने को मजबूर हैं।** क्या काम के घंटे 12 हो जाने पर मज़दूरों के सपनों की हत्या नहीं हो रही है? मज़दूर वर्ग के वर्गीय एकता के अभाव में उसके बिखराव का फायदा उठाकर उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से गुलाम बना देने की पूंजीपति वर्ग की क्या यह एक साजिश नहीं है?

ऐसे में सवाल उठता है कि जहां आज तकनीकी विकास उस दौर से कई-कई गुना उन्नत हो गया है। जब 'काम के घंटे आठ करो' की लड़ाई लड़ी गयी थी। यानी तब की तुलना में आज मज़दूर की उत्पादक क्षमता (मशीनों के आधुनिकीकरण से) कई गुना बढ़ गई है। ऐसे में मज़दूरी बढ़नी चाहिए तथा काम के घंटे कम होने चाहिए लेकिन इसका उल्टा हो रहा है। आज तो अधिक मज़दूरी और काम के घंटे कम करने को कौन कहे न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं दी जा रही है। और काम के घंटों को बढ़ाकर 12 कर दिया गया है। यह पूंजीपतियों द्वारा मज़दूरों के श्रम पर खुली डकैती नहीं तो और क्या है? शायद पूंजीवादी लोकतन्त्र में यही स्वतन्त्रता और आजादी है।

दूसरी तरफ ,बेरोजगारी का सवाल भी कहीं न कहीं काम के घंटों के सवाल से जुड़ा हुआ है। जहां एक तरफ देश में लगभग 30 करोड़ बेरोजगार चप्पल फटकार रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ 12-12 घंटे जबरन काम लेना कहां का न्याय है? यदि वर्तमान परिस्थितियों में ही काम के घंटे को आठ कर दिया जाय तो कम से कम वर्तमान रोजगार का 50% रोजगार और पैदा हो सकता है। दूसरी तरफ यदि काम के घंटे 6 कर दिये जायें तो वर्तमान रोजगार का दोगुना रोजगार और पैदा हो जायेगा। लेकिन मुनाफे पर आधारित इस व्यवस्था में ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसा करने पर पूंजीपति का मुनाफा कम हो जायेगा, जोकि पूंजीपति के रूप में जिन्दा रहने के लिए उसकी आवश्यक खुराक है। वर्तमान व्यवस्था के बने रहने पर एक तरफ तो श्रम की लूट से पूंजीपति का मुनाफा तो बढ़ता ही है दूसरी तरफ उसके लिए सस्ते श्रम का अपार भण्डार बेरोजगारों की फौज के रूप में मौजूद रहता है।

अत: यह स्पष्ट है कि पूंजीपति वर्ग काम के घंटे बढ़ाकर हमारी लड़ाई को और पीछे ले जाने पर आमादा है। वह हमसे जानवरों की तरह काम लेकर हमारी मानवीय चेतना का कुन्द कर देना चाहता है। उसने हमें अपनी फैक्ट्री में खटने वाला एक यन्त्र बना दिया है। काम के घंटे बढ़ाकर वह हमारे जीवन का भारी हिस्सा अपनी गुलामी में कैद कर लेना चाहता है, ताकि उसकी पूंजी का अम्बार लगातार बढ़ता रहे।

दुनिया के मज़दूरों द्वारा जीती गयी 'आठ घंटे काम' की लड़ाई आज हमारी एकजुटता के अभाव में फिर से पीछे ढकेली जा रही है। ऐसे दौर में हमें आज फिर एक बार काम के घंटे एवं वाजिब मज़दूरी के सवाल को लेकर संघर्ष करना होगा। इस लड़ाई को केवल एक कारखाने तक सीमित रहकर नहीं बल्कि मेहनतकशों की व्यापक एकजुटता से ही लड़ा जा सकता है। तभी हम लूट पर आधारित इस व्यवस्था का समूल नाश करने की दिशा में आगे बढ़ेंगे, यही हमारी आज की फौरी जरूरत भी है।

शिवरतन
(दिल्ली)

शुरुआत की सुबह

छोटी छोटी बातें
हजारों दुख गाथाएं
समझने में सीधी और आसान
कहीं सिर्फ एक या दो मामूली–सी
पहचान।
धूलकण
एक पेड़ का गिरना
कहीं से थोड़ा सा रिसाव,
चूल्हे का ऊष्म धुंआ।
हमारी आवाज शर्मिन्दा होकर
छुप जाती है मशीनों के बाजार में।
सिर्फ वेदनाएं
दुख की गाथाएं
चलती रहेंगी अनन्त काल तक
या
हम उठ खड़े होंगे
अंतिम क्षणों में?
अन्त नहीं होगा
जहां अंत होना था,
वहीं शुरुआत की सुबह खिल उठेगी।

- शहीद श्रमिक नेता शंकर गुहा नियोगी

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों में क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुर (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ♦ जनचेतना डी.68, निराला नगर लखनऊ ♦ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से8-30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ♦ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास कालोनी, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ♦ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ♦ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ♦ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू. वाराणसी ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ♦ राजीव वर्मा द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी. 82, पटेलनगर, मुगलसराय, वाराणसी ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, दिल्ली ♦ ललित सती, भारतीय जीवन बीमा निगम, करोलबाग, नई दिल्ली ♦ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, न्यू कलक्ट्रेट, गाजियाबाद ♦ न्यू किरन पुस्तक भण्डार, ए-56, हरकेश नगर, नई दिल्ली ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ♦ समकालीन प्रकाशन (प्रा) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना ♦ विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, नेपियर टाउन, जबलपुर ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ♦ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया
नेपाल ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, ब्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल

मज़दूरों की ग़ैरक़ानूनी लूट का बाजार बनीं

लुधियाना की स्टील फैक्टरियां

सुखवंत

लुधियाना की छोटी–बड़ी सभी फैक्टरियां मज़दूरों की अंधी और ग़ैरकानूनी लूट के अड्डे है। जो श्रम क़ानून इस देश की सरकार ने बनाये हैं और पूंजीपति जमात जिन्हें मानती है और जिन्हें लागू करने के लिए श्रम विभाग है, उन श्रम कानूनों की यहां धज्जियां उड़ाई जाती हैं। लुधियाना में बहुत कम ऐसी फैक्टरियां हैं जहां श्रम कानून लागू किये जाते हैं। इस लेख में श्रम कानूनों, विशेषकर तनख्वाहों – उजरतों से संबंधित कानूनों के लागू न होने से होने वाले मज़दूरों के शोषण की चर्चा की गयी है।

उजरतों एवं अन्य आर्थिक सहूलियतों पर डाका

एक मज़दूर साइकिल पार्ट्स बनाने वाली एक फैक्टरी में पिछले आठ सालों से बतौर फोरमैन काम कर रहा है। मालिक उसको 5,000 रुपये तनख्वाह देता है लेकिन दस्तख़त 2,500 रुपये पर करवाता है। लम्बे समय से काम कर रहे पक्के और कुशल मज़दूरों के मामले मे मालिक ऐसा इसलिए करते हैं ताकि फैक्टरी छोड़ते समय मजदूरों के सभी सेवा लाभ – ग्रैच्युटी, छुट्टियां, प्राविडण्ट फण्ड, बोनस आदि सब कुछ रजिस्टर पर दर्ज की गई तनख्वाह के मुताबिक तय किये जायें। इतना ही नही, मालिक ने चोरी से उसकी सर्विस में ब्रेक डालकर उसकी आठ साल लम्बी सर्विस को दो हिस्सों में बांट दिया है ताकि उसे 5 साल के नीचे की दर से सेवालाभ देने पड़े। यही नही, मालिक ने उस मज़दूर के बीमार होने के कारण फैक्टरी में उसकी गैरहाजिरी का फायदा उठाकर पक्के लेबर में से उसका नाम काट दिया है। अब वह उसे फैक्टरी से निकालना चाहता है। आठ साल तक खून निचोड़ने के बाद अब मालिक उस मज़दूर के 75 हजार रुपये भी हड़पकर अपनी तिजोरी में रख लेगा।

एक अन्य फैक्टरी मालिक ने चुपचाप अपनी फैक्टरी का नाम बदल दिया है और मज़दूरों के सभी कानूनी सेवा–लाभ हड़प लिये हैं। लुधियाना में ऐसे अनेकों मिसालें मिल सकती हैं। मालिकों के पास ऐसे अनेकों हथकण्डे हैं जिनका इस्तेमाल वे अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए करते हैं। पर इनके बारे में मज़दूरों को कोई जानकारी नहीं, समझ नहीं या फिर किसी मजबूरी के चलते वे कुछ करने की हालत में नहीं होते। एक ही फैक्टरी में लंबे समय से काम करते आ रहे, अच्छी तनख़्वाह लेने वाले और वफादार समझे जाने वाले मज़दूरों के साथ अगर मालिक इस तरह का व्यवहार करते है, तो नये, कच्चे और अकुशल मज़दूरों की हालत का आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। आइये, कुछ आगे देखते हैं।

छोटी फैक्टरियों के मालिक सबसे पहले तो अपनी फैक्टरियों को फैक्टरी ऐक्ट से बाहर रखने के लिए तिकड़में करते हैं। एक ऐसा तबका भी है जो एक ही फैक्टरी के अन्दर, कानूनी शर्तें पूरी किये बगैर, दो–दो, तीन–तीन फैक्टरियां चलाता है। लेबर अधिकारियों के छापा मारने पर मजदूरों को इधर–उधर छुपाकर वे टाइम पास करते हैं। प्रायः यह सब लेबर अधिकारियों की मिलीभगत से ही होता है। कागज पर कम से कम लेबर दिखाने जैसे हथकण्डे, टैक्स–चोरी, जैसे अन्य लाभों के साथ–साथ मज़दूरों के कानूनी अधिकारों को हड़पने के लिए भी इस्तेमाल किये जाते हैं।

इस तरह की अनेक फैक्टरियों में पक्के रजिस्टरों पर हाजिरी, सरकार द्वारा तय कम से कम वेतनमान, तथा उससे जुड़े प्राविडेण्ट फण्ड, ई.एस.आई.की सहूलियतों, हफ्तावार छुट्टी, बोनस आदि का कोई भी हक मज़दूरों को हासिल नहीं होता। किसी फैक्टरी में हाजिरी भले ही पक्के रजिस्टर पर लगती हो, लेकिन तनख्वाह फिर भी कम देकर ज्यादा दर्ज की जाती है। और मालिक जब भी चाहता है, मज़दूर को डांट–डपटकर 'गेट बंद' हुक करके उसके मत्थे पर मार दिया जाता है। आम तौर पर मज़दूर के पास इस बात का कोई सुबूत नही होता कि वह फैक्टरी में कितने समय से काम करता आ रहा है। ऐसी हालत में लेबर महकमा का कानून मज़दूर की मदद करने से सरेआम हाथ खड़े कर देता है। इस स्थिति में मज़दूर अक्सर दलालों के चंगुल में फंस जाते हैं। लुधियाना में मज़दूरों की मदद करने के नाम पर जगह–जगह दलाल बैठे हैं। मज़दूरों के लिए कुएं से निकलकर खड्ड में गिरने जैसी हालत बन जाती है। लगातार ऐसी परेशानियों से घिरे मज़दूर नीमपागलों जैसी हालत में जीते हैं।

फैक्टरियों के अंदर ज़ोर जबर्दस्ती और उत्पीड़न

फैक्टरियों के अन्दर घोर दबाऊ (उत्पीड़क) और दहशत भरा माहौल है। मज़दूरों को एक–एक पल मशीनों से जोड़े रखने के लिए, फोरमैनों और सुपरवाइजरों की बाज निगाहें और धमकी भरा हुक्मिया अन्दाज है, डांटें हैं और कभी–कभी मुंह पर पड़ते झांपड़ और दुड्डे भी हैं। इस तरह के व्यवहार के साथ–साथ काम से हटा देने की धमकी भी मज़दूरों के कंधों पर सवार रखी जाती है। फोरमैनों की दहशत फैक्टरी के अन्दर ही नहीं, बाहर भी है। ऐसे मामलों पर भी नजर रखी जाती है कि ड्यूटी के बाद कौन कहां जाता है, क्या करता है।

मज़दूरों पर सबसे कड़ी नजर इस बात के लिए रखी जाती है कि वे फैक्टरी के अन्दर यूनियन बनाने की कोई योजना तो नहीं बना रहे हैं। शक होते ही मालिक चौकन्ने हो जाते हैं। ऐसे मज़दूर के इर्द–गिर्द निगरानों और चमचों की बाड़ खड़ी कर दी जाती है। उसे चोरी जैसे किसी झूठे केस में फांसने की साजिशें होने लगती हैं और अंत में किसी न किसी बहाने फैक्टरी से उस मज़दूर का बिस्तर गोल कर दिया जाता है। फैक्ट्री से छुट्टी कर देने का मकसद संबंधित मजदूर को सज़ा देने के साथ–साथ बाकी मज़दूरों में दहशत पैदा करना भी होता है।.....

फैक्टरियों के अन्दर काम के हालात और दुर्घटनाएं

लुधियाना में छोटे और मझोले दरजे की फैक्टरियां ज्यादातर रिहाइशी मुहल्लों में हैं। ये फैक्टरियां बहुत ही अंधेरे और तंग कमरों में लगाई गई हैं। फैक्टरियों के लिए निर्धारित इलाकों में भी जो मंझोले (दरमियानी) दरजे की फैक्टरियां हैं जिनमें सौ या इससे अधिक मज़दूर काम करते हैं, उनके भीतर हवा, रोशनी, खुली जगह के अभाव आदि कारणों से मज़दूरों को बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। काम के दौरान जूते, वर्दियां, दस्तानें, हवा के लिए जरुरी पंखे आदि मुहैया कराना पूंजीपति फालतू का बोझ ही समझते हैं। मज़दूरों को इन सबके लिए संघर्ष करने पड़ते हैं जो रोज़गार गंवाने की कीमत पर होते हैं।

फैक्टरियों के अन्दर काम के भारी बोझ के साथ–साथ ऊपर से जबर, दहशत और तिरस्कार भरी स्थितियों, घोर आर्थिक समस्याओं और जिन्दगी की अन्य अनेकों परेशानियों के चलते मज़दूर अक्सर दुर्घटनाओं के शिकार होते रहते हैं। इन दुर्घटनाओं के लिए फैक्ट्री मालिक पूंजपति और भ्रष्ट लेबर अधिकारी आम तौर पर मज़दूर को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। कई फैक्टरी मालिक तो जानलेवा दुर्घटनाओं में मुआवजा देने से बचने के लिए मज़दूर की लाश तक को गायब करने से गुरेज नहीं करते। चुनावी पार्टियों और दलाल ट्रेड यूनियनों के नेता ऐसे मौकों पर झट से आ टपकते हैं। वे मजदूरों के साथ हमदर्दी का ढोंग रचते हुये, अंदर ही अंदर, फैक्टरी मालिक की जेब की रखवाली के लिए पूरा ज़ोर लगा देते हैं। मुसीबत में फंसे ऐसे मजदूरों की खरी और बेगर्ज़ मदद के लिए भला कौन है?

लेबर महकमा और सरकार : सगे मज़दूर के कि मालिक के ?

लेबर महकमा के नाम पर सरकार ने एक सफेद हाथी खड़ा किया है। पर ये दोनों मज़दूरों के हिमायती या दोस्त नहीं है और न ही हो सकते हैं। जब बुर्जुआ लेबर कानून की भावना ही यह है कि मज़दूर को "जीवित रखने के लिए कम से कम" देना है और लेबर अधिकारियों को इसी भावना के मुताबिक शिक्षित किया जाता है, तो उनसे मज़दूरों के भले की उम्मीद भला किस तरह की जा सकती है! आगे चलकर लेबर अधिकारी इसी स्पिरिट के अनुसार काम करते हैं। वे हमेशा मज़दूरों की समस्याओं से आंखें बन्द रखते हैं। वे मज़दूरों के रोजगार की रक्षा करने के बजाय फैक्टरी मालिकों के सरकारी वकील अधिक बनते हैं। इसके एवज़ में फैक्टरी मालिक हमेशा लेबर अधिकारियों की जेब गरम रखते हैं।

हमारे देश की सरकार द्वारा नई आर्थिक और औद्योगिक नीतियों पर अमल शुरु करने से मज़दूरों के रोजगार और भी असुरक्षित हो गये हैं तथा तनख्वाहें और गिर गई हैं। "खुली मज़दूर मण्डी" के नाम पर लेबर कानूनों के सुरक्षा घेरे में आने वाले पक्के मज़दूरों की जगह अब ठेके पर तथा कच्चे मज़दूरों से बहुत ही मामूली तनख्वाहों पर काम लिया जा रहा है। इसी तरह 'पीस रेट सिस्टम' के तहत मज़दूरों को काम के घण्टों के बजाय काम की मिक़दार (मात्रा) से बांधा जा रहा है तथा आठ घण्टे दिहाड़ी के सवाल को अर्थहीन बनाया जा रहा है। मज़दूरों के संगठित होने के अधिकार को छीनने के प्रयास हो रहे है। उनसे प्राविडेण्ड फण्ड की कटौती दस प्रतिशत से बढ़ाकर बारह प्रतिशत कर दी गई हैं। उधर पूंजीपति फैक्टरी मालिकों को यह पैसा निजी तौर पर इस्तेमाल करने की छूट दे दी गई है। मालिक जितने समय तक चाहें इस पैसे का इस्तेमाल करते हैं, पर फण्ड–दफ़्तर में रकम देरी से जमा होने का जिम्मा मज़दूरों के सिर आन पड़ता है। लेबर महकमें और सरकार ने मालिकों को ऐसी अनेक सहूलियतें दे रखी हैं।

अपनी किस्मत को खुद बदलने के लिए आगे आओ !

लेबर कानूनों से आंखें मूंदकर या इनका उल्लंघन करके पूंजीपति फैक्टरी मालिक मज़दूरों का जो शोषण करते है, भले ही वह उनके द्वारा की जाने वाली कुल आर्थिक लूट का एक छोटा हिस्सा बनता है, फिर भी मालिक आसानी से मज़दूरों को यह कानूनी अधिकार देने के लिए तैयार नहीं होते। फैक्टरी मालिक उन हालात को अच्छी तरह से समझते हैं जिनसे मजबूर होकर प्रवासी मज़दूर सैकड़ो मील दूर रोज़गार ढूढ़ने आते हैं। फैक्टरी मालिक इसका ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा लेते हैं। दूसरी ओर मज़दूर सौदेबाजी करने की हालत में नहीं होता। उसके लिए कम से कम तनख्वाह के स्केल से बड़ा सवाल रोजगार पाने का होता है।

फैक्टरियों के भीतर मज़दूरों को न तो काम के बेहतर हालात मिलते हैं और न ही जनवादी माहौल मिलता है। लेकिन अपनी ग्रामीण पृष्ठभूमि की ज़िन्दगी के मुकाबले, अपनी ज़िन्दगी की हक़ीकत को, मौजूदा समाज में अपनी हैसियत को तथा फैक्टरी मालिक पूंजीपतियों से अपने रिश्ते को ज्यादा अच्छी तरह से समझने का उन्हें मौका मिलता है। अन्य नकारात्मक पहलुओं के बावजूद उनके संगठित होने के लिए अनुकूल हालात भी बनते हैं। फैक्टरियों के भीतर छोटी–छोटी समस्याओं पर वे इकट्ठा होने लगते हैं, छोटे–छोटे संघर्ष करते हैं, धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं। ये छोटे संघर्ष उनके बड़े संघर्षों की तैयारी का काम करते हैं, जो बड़े राजनीतिक महत्व वाले बुनियादी एवं जनवादी मसलों पर लड़े जाने हैं तथा जो मज़दूर जमात की किस्मत बदलने के लम्बे संघर्ष की राह में मील के पत्थर बनते हैं।

ऐसे संगठित तथा योजनाबद्ध संघर्षों के प्रयोगों से गुजरकर ही मज़दूर संगठन के सदस्यों की राजनीतिक सूझबूझ आगे बढ़ती है तथा पक्की होती है। भले ही यह अमल इतना आसान और सीधी रेखा में चलने वाला नहीं होता, लेकिन फिर भी एक क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन के सम्पर्क में मज़दूरों का एक हिस्सा साधारण सदस्यों से आगे बढ़कर संघर्षो की कुठाली में तपे मज़दुद कारकूनों (ऐक्टिविस्ट) में बदल जाता है। वे मज़दूरों के संगठन का महत्वपूर्ण अंग होते हैं जिनके इर्द–गिर्द सैकड़ों अन्य मज़दूर जुड़े होते हैं। एक क्रांन्तिकारी मज़दूर संगठन ऐसे ही मज़दूरों के कंधों पर चलता है और लम्बे रास्ते तय करता है। किसी क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन के पास जितने अधिक ऐसे मज़दूर होंगे, वह संगठन उतना ही बड़ा मजदूर आंदोलन खड़ा कर सकेगा तथा अपनी किस्मत अपने हाथ लेने के संघर्ष में मज़दूर जमात के लाल झण्डे को उतना ही ऊंचा लहरा सकेगा।.....

सही क्रान्तिकारी लाइन पर मज़दूर आंदोलन का निर्माण करने से ही मज़दूर जमात अपनी किस्मत खुद बदलने की राह पर आगे बढ़ सकती है।

अनुवाद : सुखविन्दर
(पंजाबी पत्रिका 'सुर्ख रेखा' से साभार)

मुंगेर के पत्थर खदानों के 50 हजार मज़दूर बेकार

एक, दूसरे या तीसरे रास्ते से होकर बेकारी की मार मज़दूरों के हर हिस्से तक पहुंच रहीं है, चाहे वे संगठित उद्योगों के मज़दूर हों या असंगठित। बहाना चाहे पर्यावरण का हो या घाटे का, बेकारी की मार मज़दूरों को ही झेलनी पड़ रही है।

ताज़ा उदाहरण बिहार के मुंगेर जिले का है जहां जिला प्रशासन के आदेश से विगत जुलाई माह से सभी साठ पत्थर खदान बंद पड़े हैं। पत्थर तोड़ने का काम करने वाले लगभग 50 हज़ार मज़दूर इस समय दाने–दाने को मोहताज हैं और रोज़गार की तलाश में दूसरे इलाकों में पलायन कर रहे हैं।

बाजार–अर्थव्यवस्था में सरकार रोजगार छीनने का फैसला तो कर सकती है, पर देने की जिम्मेदारी से खुद को पूरी तरह मुक्त कर लेती है।

पार्टी के बोल्शेविकीकरण की बुनियादी शर्तें

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों में सामाजिक जनवादी या संशोधनवादी विचारों की घुसपैठ को कैसे रोका जाये, उनका बोल्शेविकीकरण कैसे किया जाये और बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों पर पार्टी-निर्माण एवं गठन की दिशा में आगे कदम कैसे बढ़ाया जाये, मजदूर वर्ग के बीच से अर्थवादी-सुधारवादी राजनीति के प्रभाव को समाप्त करके क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति का वर्चस्व कैसे स्थापित किया जाये यह प्रश्न भारतीय मजदूर आन्दोलन के आज के सर्वाधिक प्रसांगिक प्रश्न हैं । जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी के एक सदस्य हर्जोग को दिये गये एक साक्षात्कार के दौरान, स्तालिन ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए इस विषय में, सूत्रवत कुछ महत्वपूण बातें कहीं थी। यह साक्षात्कार 3 फरवरी, 1925 को "प्रावदा" मे प्रकाशित हुआ था।

बोल्शेविकीकरण के बारे में स्तालिन के इन विचारों को हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। - **सम्पादक**

स्तालिन

कुछ कामरेड सोचते हैं कि पार्टी को मजबूत बनाने और उसका बोल्शेविकीकरण करने का मतलब होता है – मतभेद रखने वाले सभी लोगों को उससे बाहर निकाल देना। जाहिर है कि यह ग़लत धारणा है। केवल मज़दूर वर्ग की ठोस जरूरतों के लिए रोज़मर्रे के संघषो के दौरान ही, सामाजिक जनवाद का भण्डाफोड़ किया जा सकता है और उसे सिकोड़कर मजदूर वर्ग के बीच अनुल्लेखनीय अल्पमत में तबदील किया जा सकता है। सामाजिक जनवादियों को इधर–उधर के सवालों के आधार पर नहीं, बल्कि अपनी भौतिक और राजनीतिक स्थितियों मे सुधार के लिए मज़दूर वर्ग के रोज़गार के संघर्षो के आधार पर कटघरे में खड़ा किया जाना चाहिये; इसमें मजदूरी, काम के घण्टों, रिहाइश के हालात, बीमा, टैक्स, बेरोजगारी, जीवन यापन की मंहगी कीमत और ऐसे ही अन्य प्रश्नों की, यदि निर्णायक नहीं तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होगी। इन सवालों के आधार पर, सामाजिक जनवादियों पर रोज़–ब–रोज़ चोट करना और उनकी गद्दारी को उजागर करना यह काम है।

लेकिन अगर रोजमर्रे के उन व्यवहारिक प्रश्नों को जर्मनी की अन्तरराष्ट्रीय और आन्तरिक स्थितियों के मूलभूत प्रश्नों से जोड़ा नहीं जायेगा, और यदि, अपने सभी कामों में, पार्टी उन सभी रोजमर्रे के सवालों को, क्रान्ति और सर्वहारा वर्ग द्वारा सत्ता को जीतने के नजरिये से हाथ में लेने में सफल नहीं होगी तो उपरोक्त काम को पूरी तरह से अंजाम नहीं दिया जा सकेगा।

लेकिन कोई भी पार्टी ऐसी नीति तभी लागू कर सकती है, जबकि उसका नेतृत्व ऐसे नेताओं के हाथों में हो, जो इसके लिए पर्याप्त अनुभवी हों कि पार्टी को मजबूत बनाने के लिए सामाजिक जनवाद की प्रत्येक गलती का फायदा उठा सकते हों, और उनका इस हद तक पर्याप्त सैद्धान्तिक प्रशिक्षण भी होना चाहिये कि वे किन्हीं खास सफलताओं के कारण क्रान्तिकारी विकास की संभावनाओं को ही नजरों से ओझल न कर दें।

यही मुख्य बात है जो स्पष्ट करती है कि जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी सहित, आम तौर पर सभी कम्युनिस्ट पार्टियों की नेतृत्वकारी कतारों का सवाल बोल्शेविकीकरण के अहम सवालों में से एक है।

बोल्शेविकीकरण को अंजाम देने के लिए कम से कम कुछ निश्चित बुनियादी शर्तों को पूरा करना जरुरी है। इसके बिना कम्युनिस्ट पार्टियों का बोल्शेविकीकरण कतई संभव नहीं होगा।

(1) पार्टी को संसदीय चुनावी मशीनरी का स्वयं को पुच्छल्ला नहीं बनाना चाहिये, जैसा कि सामाजिक जनवादी पार्टी वास्तव में बन चुकी है, और इसे ट्रेड यूनियनों का निष्प्रतिफल पूरक भी नहीं होना चाहिये, जैसा कि कुछ अराजकतावादी–संघाधिपत्यवादी तत्व कभी–कभी दावा करते हैं कि इसे ऐसा ही होना चाहिये। पार्टी को सर्वहारा के **वर्गीय संयोजन** का **उच्चतम** रूप होना चाहिये, जिसका काम ट्रेड यूनियनों से लेकर पार्टी के संसदीय ग्रुपों तक, सर्वहारा संगठनों के सभी रूपों को **नेतृत्व प्रदान करना** होता है।

(2) पार्टी को, और खासकर इसके नेतृत्वकारी तत्वों को, मार्क्सवाद के क्रान्तिकारी सिद्धान्त में, व्यापक रूप से महारत हासिल करना चाहिये, जो क्रान्तिकारी व्यवहार से अविभाज्यतः जुड़ा हुआ होता है।

(3) पार्टी को अपने नारे और निर्देश पिटे–पिटाये फामूलों या ऐतिहासिक सादृश्यों के आधार पर नहीं, बल्कि क्रान्तिकारी आन्दोलन की ठोस आन्तरिक और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के सजग विश्लेषण के नतीजे के तौर पर निर्धारित करने चाहिये, और उसे बिना चुके हुये, सभी देशों की क्रान्तियों के अनुभवों पर ध्यान देना चाहिये।

(4) पार्टी को जनसमुदाय के क्रान्तिकारी संघर्ष के दहन–पात्र में इन नारों और निर्देशों के सहीपन का परीक्षण करना चाहिये।

(5) पार्टी का समूचा काम, खासतौर पर यदि सामाजिक जनवादी परम्पराओं का उसमें पूरी तरह खात्मा न हुआ हो तो, नई, क्रान्तिकारी लाइनों पर पुनर्संगठित किया जाना चाहिये, ताकि पार्टी द्वारा उठाया गया हर कदम, उसके द्वारा की गई हर कार्रवाई, स्वाभाविक तौर पर जनता के क्रान्तिकारीकरण में सहायक हो तथा मजदूर वर्ग की व्यापक आबादी को क्रान्तिकारी स्पिरिट में शिक्षित–प्रशिक्षित करें।

(6) पार्टी को अपने कामों में, उसूलों पर सर्वाधिक सख्ती के साथ डटे रहने (इसे संकीर्णतावाद के साथ गड्डमड्ड न किया जाये) और जनसमुदाय के साथ अधिकतम सम्बन्ध एवं सम्पर्क बनाये रखने (इसे ख़्योस्तवाद के साथ गड्डमड्ड न किया जाये!) को एक साथ जोड़ने मे सक्षम होना चाहिये; इसके बिना पार्टी न केवल जनता को शिक्षित करने में, बल्कि उससे सीखने में भी अक्षम सिद्ध होगी, यह न केवल जनता का नेतृत्व कर पाने में और उसे अपने स्वयं के स्तर तक ऊंचा उठा पाने में असमर्थ होगी, बल्कि यह उसकी आवाज पर ध्यान दे पाने और उसकी आसन्न आवश्यकताओं का अन्दाजा लगा पाने की स्थिति में भी नहीं रह जायेगी।

(7) पार्टी को अपने कामों में समझौताविहीन क्रान्तिकारी स्पिरिट (इसे क्रान्तिकारी दुस्साहसवाद के साथ गड्डमड्ड न किया जाये!) के साथ अधिकतम लचीलेपन और युक्तिचालन क्षमता (इसे अवसरवाद के साथ गड्डमड्ड न किया जाये!) को जोड़ने में समर्थ होना चाहिए; इसके बिना पार्टी संघर्ष और संगठन के सभी रूपों में महारत हासिल कर पाने में सक्षम नहीं बन पायेगी और सर्वहारा वर्ग के दैनन्दिन हितों के साथ सर्वहारा क्रान्ति के मूल भूत हितों को जोड़ पाने में तथा अपने कामों में कानूनी संघर्ष को गैरकानूनी संघर्ष के साथ जोड़ पाने में सफल नहीं हो पायेगी।

(8) पार्टी को अपनी गलतियों को छुपाना नहीं चाहिये, इसे आलोचना से डरना नहीं चाहिये, इसे अपनी खुद की गलतियों से अपनी कतारों को शिक्षित करना चाहिये और उन्नत बनाना चाहिये।

(9) पार्टी को अपने मुख्य नेतृत्वकारी समूह में उन्नत योद्धाओं के बीच से ऐसे सर्वोत्तम तत्वों की भरती में सक्षम होना चाहिये जो क्रान्तिकारी सर्वहारा की आकांक्षाओं के सच्चे प्रवक्ता होने के लक्ष्य के प्रति अत्यधिक समर्पित हों, और जो इस हद तक पर्याप्त अनुभवी हों कि सर्वहरा क्रान्ति के वास्तविक नेता बन सकते हों, तथा लेनिनवाद की रणनीति और रणकौशल को लागू कर पाने में सक्षम हों।

(10) पार्टी को सुव्यवस्थित ढंग से अपने संगठनों की सामाजिक संरचना को उन्नत करते जाना चाहिये और अधिकतम एकजुटता हासिल करने के नज़रिये से, भ्रष्टकारी अवसरवादी तत्वों से अपने को मुक्त कर लेना चाहिये।

(11) पार्टी को विचारधारात्मक एकता, आन्दोलन के लक्ष्यों के बारें में सुस्पष्टता, व्यावहारिक कार्रवाई की एकता और पार्टी–सदस्यों द्वारा पार्टी के कार्यभारों की समझदारी के आधार पर फौलादी सर्वहारा अनुशासन कायम करना चाहिये।

(12) पार्टी को व्यवस्थित ढंग से जांच करते रहना चाहिये कि इसके फैसलों और निर्देशों को लागू किया जा रहा है या नहीं; अन्यथा यह खतरा बना रहेगा कि कहीं ये फैसले और निर्देश महज खोखले वायदे बन कर न रह जायें। ऐसी स्थिति में पार्टी व्यापक सर्वहारा आबादी का विश्वास खो देगी।

ऐसी और इस तरह की शर्तों के अभाव में, बोल्शेविकीकरण महज एक खोखली बात बनकर रह जायेगा।

संघ परिवार की कई मुँह.....

पेज 1 से जारी.....

से ही तालमेल करती रही है। तब दक्षिणपंथ के इस ब्राण्ड की भारतीय पूंजीपति वर्ग को जरूरत नहीं थी। इसीलिए भारतीय जनसंघ मुख्यतः व्यापारियों की पार्टी बनी रही। मूल और मुख्य बात यह है कि सामाजिक–आर्थिक ढांचे की जिस ज़रूरत ने आर्थिक कटट्रपंथ को जन्म दिया है, उसी ने धार्मिक कटट्रपंथ के सामाजिक आधार को भी व्यापक बनाया है और भाजपा के सत्तासीन होने का रास्ता साफ किया है। मूल और मुख्य बात यह है कि बाजार–उपनिवेशवाद या आर्थिक नव–उपनिवेशवाद की नीतियों पर अमल को आगे जारी रखने के लिए एक निरंकुश, स्वेच्छाचारी, सर्वसत्तावादी राज्य सत्ता की ज़रूरत होगी और भारतीय पूंजीवादी जनवादी राज्यसत्ता के रूपान्तरण या पुनःसंस्कार के इस काम को आज भाजपा अंजाम दे रही है जो भारतीय राजनीतिक इतिहास की क्लासिकी ढंग की फासिस्ट पार्टी है। मूल और मुख्य बात यह है कि आवश्यकतानुसार उदारवादी पैंतरापलटों के बावजूद, भाजपा संघ परिवार से विलग कभी नहीं होगी और अपने धार्मिक कटट्रपंथी मूल स्वर और स्वरूप को बनाये रखेगी तथा सत्ता में न रहने की स्थिति में भी इसकी फासिस्ट उपस्थिति भारतीय राजनीति में आगे बनी रहेगी। आगे भी यह क्रान्तिकारी जन–संघर्षों को साम्प्रदायिक फूट की कोशिशों और मन्दिर–विवाद जैसे मसलों के सहारे दिग्भ्रमित करती रहेगी, उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं और कमज़ोर पड़ोसियों के विरुद्ध अंधराष्ट्रवादी नारे देती रहेगी और काल्पनिक शत्रुओं के विरुद्ध शर–संधान करती हुई साम्राज्यवाद और भारतीय पूंजीपति वर्ग की सेवा करती रहेगी। भाजपा और संघ परिवार की विडम्बनापूर्ण नियति यह है कि सम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद को आज फासीवाद के नियंत्रित इस्तेमाल की ही ज़रुरत है। यह भी कारण है कि इन्हें कई मुहों से बोलना होता है और बीच–बीच में उदारवादी पैंतरापलट भी करने पड़ते हैं।

आज उदारीकरण– निजीकरण की नीतियों पर तेज अमल शासक वर्ग की जितनी बड़ी मजबूरी है, उतनी ही बड़ी समस्या यह है कि इन नीतियों के विरुद्ध जन असंतोष गहराता जा रहा है। यह जन असंतोष इतनी जल्दी व्यवस्था के लिए संकट तो नहीं बनने वाला है, पर इसके दबाव से भाजपा गठबंधन के टूट जाने और सत्ताच्युत हो जाने का खतरा लगातार बना रहता है। कांग्रेस और अन्य संसदीय विपक्षी दल (खासकर "तीसरी शक्ति" कहलाने वाले मध्यमार्गी, समाजवादी और चुनावी "कम्युनिस्ट") इस स्थिति का लाभ न ले सकें, इसके लिए संघ परिवार के ही अन्य मुंह–स्वदेशी जागरण मंच और भारतीय मजदूर संघ आदि उदारीकरण का विरोध करते रहते हैं। और स्वयं भाजपा के भीतर ही मौजूद एक धड़ा नकली विपक्ष की भूमिका निभाता रहता है। लेकिन हर निर्णायक मुकाम पर नई आर्थिक नीतियों का यह नकली विरोधी स्वर मन्द पड़ जाता है और टकराव की स्थिति कभी नहीं आती। इसका ताजा ज्वलंत उदाहरण यह है कि प्रधानमंत्री बाजपेयी की अमेरिका यात्रा से ठीक पहले भाजपा कार्यकारिणी ने अपनी नागपुर बैठक में सरकार के आर्थिक एजेण्डे को पूर्णतः स्वीकारते हुए संशोधन के सारे सुझावों को खारिज कर दिया और इस तरह देशी पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों को यह यक़ीन दिलाने की कोशिश की गई कि आर्थिक नव उपनिवेशवाद की नीतियों को लागू करने के मामले में उनकी योग्यता और निष्ठा को निर्विवाद समझा जाये। हालात के इन्हीं तकाजों के चलते "मुखौटा" आज "मुख" बन गया है, वाजपेयी निर्णायक स्थिति में दीख रहे हैं, "स्वदेशी" के मुखर पैरोकारों को फिलहाल पृष्ठभूमि में कर दिया गया है। नये पार्टी–अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण की नयी टीम भी इसी वक्ती ज़रूरत के हिसाब से गठित की गई है। कल को जब फिर जनता का "विश्वास जीतने" का समय होगा तो फिर स्वदेशी जागरण मंच का भोपूं बजने लगेगा और दत्तो पंत ठेंगड़ी मज़दूर हितों की दुहाई देते हुए अपनी ही सरकार की आर्थिक नीतियों को कोसने लगेंगे।

और जब यह भी काम नहीं आयेगा तो काशी–मथुरा–अयोध्या के मसले को या फिर कश्मीर के सवाल और धारा 370 के मसले को जोर–शोर से उठाने की कोशिश की जायेगी। ये बातें आज भी की जा रही हैं, पर ये भाजपा का मुख्य स्वर नहीं है। फिलहाल यह जिम्मेदारी विश्व हिन्दू परिषद को सौंप दी गई है।

"स्वदेशी" के नारे की लोकरंजकता के अतिरिक्त एक पहलू यह भी है कि साम्राज्यवादियों से सौदेबाजी करते समय उनका 'जूनियर पार्टनर' भारतीय पूंजीपति वर्ग इसे एक हथकण्डे या बटखरे के रूप में इस्तेमाल करता है। बुर्जुआ राजनीति में "स्वदेशी" की बात करने वाले कुछ 'दबाव धड़ों' (प्रेशर लाबी) की मौजूदगी भारतीय पूंजीपति वर्ग की जरूरत है।

एक बात यह भी है कि हिन्दूवादी कट्टरपंथ के चुनावी लाभ को लेकर भाजपा दुविधा में है। हिन्दूवादी कटट्रपंथी चुनावी लहर पर सवार होकर अधिकतम जो पाया जा सकता था, वह पाया जा चुका है। बंगारू लक्ष्मण जब दलितों और मुसलमानों को यह कहकर पास आने के लिए पुचकारते हैं कि पार्टी अब पहले जैसी नहीं रही, तो इसके पीछे वक्ती तौर पर संघ से दूरी का दिखावा करते हुए उदारवादी राजनीति का मुखौटा लगा लेने का तकाजा काम करता दिखाई देता है। पर साथ ही यह दुविधा भी है कि क्या दलित और मुसलमान वोट बैंक में इस पैंतरापलट से सेंधमारी संभव है? और कहीं ऐसा तो नहीं कि इस चक्कर में संघ के कैडर–आधारित ढांचे के सहारे बटोरे जाने वाले सवर्ण, व्यापारी और शहरी मध्यवर्गीय मतों को भी खोना पड़ जाय। यही दुविधा बाजपेयी से संघ मुख्यालय में मत्था टेकवाती है और अमेरिका में विहिप के मंच से अपने स्वयंसेवक होने की घोषणा करवाती है और इसी वजह से, ठीक बंगारू लक्ष्मण के उदारवादी तेवर के ऐन समय में ही विश्व हिन्दू परिषद जोर–शोर के साथ यह ऐलान करती है कि अगले वर्ष मन्दिर–निर्माण का काम हर कीमत पर शुरू हो जायेगा, भले ही इस सरकार का पतन हो जाये।

भाजपा के एक बड़े हिस्से के भीतर यह अहसास है कि वह अन्य पार्टियों से गठबंधन करके ही पुनः सत्तारूढ़ हो सकती है। ऐसे में हिन्दुत्व के एजेंडे पर निर्बाध अमल के नाम पर विहिप और संघ परिवार के अन्य घटक उसके लिए ज्यादा से ज्यादा वोट बटोर सकते हैं और फिर किसी भी गठबंधन की आम सहमति के एजेण्डे की बाध्यताओं की आड़ लेकर वह मन्दिर–मस्जिद विवाद को आगे टाल सकता है तथा पूंजीपति वर्ग के आर्थिक एजेण्डे पर अमल को जारी रख सकता है। यदि वह फिर से सत्तासीन नहीं होगा तो जाहिर है कि कट्टरपंथी हिन्दुत्व के एजेण्डे के साथ ही तथाकथित स्वदेशी का लोकरंजक झण्डा भी उसके हाथ में होगा।

कई मुंह से बोलने और तरह–तरह के पैंतरापलट का काम भाजपा पहले भी करती रही है। गांधी के हत्यारों के महिमामण्डन से बरास्ता एकात्म मानववाद गांधीवादी समाजवाद तक, आगे–पीछे "शण्टिंग" वे पहले भी करते रहे हैं। पहले भी ऐसा हो चुका है कि अपने ही घटक भाजपा को दरकिनार करके संघ ने कांग्रेस की दक्षिणपंथी नीतियों को (जैसे आपातकाल के उत्तरवर्ती दौर में और फिर पंजाब में खालिस्तान आतंकवाद के दौर में) समर्थन दिया है।

कई मुंहों से बोलना संघ परिवार की फासिस्ट राजनीति की अभिलाक्षणिकता है, कई विकल्पों को खुला रखना और हरदम पैंतरापलट के लिए तैयार रहना भाजपा की सोची–समझी, जांची–परखी रणनीति है तथा इससे पैदा होने वाले अन्तरविरोधों को झेलना उसकी नियति है। एक मुंह से सत्तापक्ष की और दूसरे मुंह से विपक्ष की भाषा बोलना संघ परिवार की सुविचारित रणनीति है।

आधुनिक दास-यात्राः पूंजीवादी बर्बरता की एक और लोमहर्षक मिसाल

कुछ वर्षों पहले अमेरिका से प्रकाशित होने वाले क्रान्तिकारी मज़दूर अखबार 'रेवोल्यूशनरी वर्कर' में उन अभागे चीनियों की दर्दनाक कहानी छपी थी, जो बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में एक छोटे से जहाज में भेड़ों–बकरियों की तरह ठूंसकर अवैध रूप से अमेरिका जा रहे थे। उनमें से कई रास्तें में ही मौत के शिकार हो गये। उन्हें ले जाने वाले दलालों ने तट के नजदीक पहुंचकर उन्हें पानी में कूद जाने को कहा। कई लोग तो जमा देने वाले ठण्डे पानी में ही डूब गये। शेष तटरक्षक सैनिकों के हत्थे चढ़कर जेलखानों में पहुंच गये। अवैध यात्रियों की हर खेप के साथ प्रायः यही कहानी दुहराई जाती थी। सैकड़ों वर्षों पहले अफ्रीका से अश्वेत गुलामों को जंजीरों में जकड़कर अमेरिकी फार्मों में काम करने के लिए ले जाया जाता था। अब पूंजी की मार से बेघर–बेदर लोग खुद ही "आधुनिक दास–यात्राओं" में शामिल हो रहे हैं।

ऐसी आधुनिक दास–यात्रा की ताज़ा मिसाल और अधिक रोंगटे खड़ा कर देने वाली है। इसी वर्ष जून माह में इंग्लैण्ड के दक्षिणी बंदरगाह डावर में चीनी मूल के 58 लोग एक ट्रक के रेफ्रीजरेटर में जमें हुये पाये गये। उनकी लाशें सीमा शुल्क अधिकारियों को तब मिलीं जब वे बेल्जियम से आये एक जहाज़ से उतरे टमाटरो से लदे इस ट्रक की जांच कर रहे थे। यूं कहने के लिए ब्रिटेन के गृहमंत्री और प्रधानमंत्री ने इस मामले की जांच करके दोषी लोगों के विरुद्ध सख्त कार्रवाई की घोषणा कर दी और संयुक्त राष्ट्र की शरणार्थियों की मानवाधिकार संस्था ने भी अफसोस जताकर तथा अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से एकजुट होकर मानव–व्यापार रोकने की अपील करके अपने कर्तव्य–निर्वाह की खानापूरी कर ली, लेकिन मूल प्रश्न अपनी जगह पर कायम है।

जो लोग जान जोखिम में डालकर चीन, मेक्सिको, भारत, पाकिस्तान, लंका या तुर्की से अवैध रूप से यूरोप–अमेरिका जाते हैं, वे साहसिक यात्राओं का शौक पूरा करने के लिए ऐसा नहीं करते। पूंजी की मार से बेघर–बेदर होकर वे ऐसा करने को मजबूर होते हैं। किसी तरह से जान बचाकर वे यदि गंतव्य देशों में पहुंच भी जाते हैं तो उजरती गुलामों की तरह दिनो–रात खटकर चन्द सिक्के कमाते हैं जिन्हें दलालों के जरियें अवैध रूप से अपने देश में परिजनों को भेजते हैं, वैद्य पासपोर्ट–वीज़ा के अभाव में लुक–छिपकर रहते हैं, पकड़े जाने पर जेल भेज दिये जाते हैं और सजा भुगतने के बाद वापस अपने देश भेज दिये जाते हैं, या फिर हाड़ गलाते–गलाते अनजान देश की सड़कों पर उम्र से पहले ही मौत का शिकार हो जाते हैं। ग़रीब देशों से इस तरह के अवैध आव्रजन का सिलसिला यूं तो पूंजीवाद के प्रारम्भिक दौर से ही जारी है, पर अब यह बहुत अधिक हो गया है। इसका एक कारण तो यह है कि अपनी घरेलू बेरोजगारी के कारण और सामाजिक तनावों से बचने के लिए पश्चिमी देशों ने अपनी आव्रजन नीतियों को अत्यधिक कठोर बना दिया है। दूसरी ओर, पूंजीवादीकरण के साथ ही विगत 25 वर्षों में तीसरी दुनिया के देशों में भारी आबादी के जगह–ज़मीन से उजड़ने और बेरोज़गारी बढ़ने का सिलसिला बहुत अधिक तेज हो गया है और भूमण्डलीकरण के दौर में अपने चरम तक जा पहुंचा है। यही आबादी दो जून की रोटी और बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में किसी भी तरह से अमीर देशो में पहुंच जाना चाहती है।

ग़ौरतलब बात है कि 1976 तक, जबतक चीन में मज़दूर राज कायम था और समाजवादी निर्माण का काम जारी था, तब तक वहां बेरोजगारी का नामोनिशान नहीं था। सत्ताइस वर्षों के भीतर भूखा, नंगा, घोर अभावग्रस्त चीनी समाज एक स्वस्थ, शिक्षित, सामाजिक अपराधों से मुक्त, न्यायपूर्ण और सापेक्षतः समतामूलक समाज में बदल चुका था। लेकिन माओ की मृत्यु के बाद वहां के पूंजीवादी पथगामी नये सत्ताधारियों ने समृद्धि के सुनहरे सपने दिखाते हुए "बाज़ार–समाजवाद" के नाम पर जो नई पूंजीवादी राह पकड़ी, उसके विनाशकारी नतीजे आज सामने हैं। बहुप्रचारित सर्वाधिक विकासदर के साथ ही चीन में धनी–गरीब की खाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार , गरीबी, महंगाई आदि में तेज गति से वृद्धि हुई है। बाज़ार की नई रुग्ण उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ ही वेश्यावृत्ति, सामाजिक अपराधों और यौन रोगों की फिर से वापसी हो गयी है। प्रति वर्ष लाखों आम चीनी मज़दूर और तकनीशियन अमेरिका और यूरोप जा रहे हैं। जितने वैध रूप से जाते हैं, उससे कई गुना अधिक अवैध रूप से जाते हैं। समृद्धि की मृगमरीचिका उन्हें आकृष्ट करती है और प्रायः उनकी मुठभेड़ होती है। मौत, जेलखाना, जानलेवा श्रम और अपराधों की दुनिया से।

अमेरिका में प्रतिवर्ष मेक्सिको से अवैध रूप से सीमा पार करके लाखो मज़दूर आते हैं जिनमें से आधे से अधिक सीमा पर ही, या फिर विभिन्न शहरों में पहुंचकर गिरफ़्तार हो जाते हैं। अमेरिका की जेलों में 90 फीसदी क़ैदी बेरोज़गार अश्वेत युवक और मेक्सिको, अन्य लातिन अमेरिका देशों और कुछ एशियाई देशों से आये अवैध आप्रवासी हैं। यही स्थिति जर्मनी में तुर्क और कुर्द कामगारों की है। जिन अमीर देशों की आव्रजन नीतियां अबतक कुछ उदार थीं, वे भी अब उन्हें सख्त बनाते जा रहे हैं। भूमण्डलीकरण के दौर में, गरीब देशों में ही ज्यादा से ज्यादा पूंजी–निवेश करके वे वहां की श्रम–शक्ति को वहीं की सस्ती दरों पर निचोड़कर विश्व बाज़ार के लिए माल पैदा करना चाहते हैं। दूसरे, अमीर देशों में भी पूंजीवादी नीतियों के परिणामस्वरूप खास तौर पर विश्वव्यापी दीर्घकालिक मन्दी के वर्तमान दौर में बेरोज़गारी तेजी से बढ़ती जा रही है। ऐसे में, बाहरी देशों से सर्वहारा आबादी को आने की छूट देकर वे अपनी आफ़त बढ़ाना नहीं चाहते। इसके बजाय वे दूसरे देशों में पूंजी लगाकर वहां की सस्ती श्रम शक्ति को वहीं निचोड़ना चाहते हैं। पर पिछड़े देशों में पूंजीवादी विकास का रास्ता रोजगार से अधिक बेरोज़गारी का सृजन कर रहा है। नतीजतन इन देशों से अवैध आव्रजन का सिलसिला लगातार जारी है। आज यह समस्या पूंजीवादी विश्व–व्यवस्था का नासूर बन चुकी है।

दरअसल इसका समाधान विश्व पूंजीवादी तंत्र की मौजूदा चौहद्दी में सम्भव भी नहीं है। जिस व्यवस्था ने उजरती मजदूरों के रूप में आधुनिक दासों को जन्म दिया है और जो आधुनिक दास–यात्राओं की बर्बरतापूर्ण त्रासदियों के लिए उत्तरदायी हैं, उसे इन दासों के प्रचण्ड झंझावाती विद्रोहों का सामना भी करना ही पड़ेगा।

परजीवी जमातों की विलासिता...

पेज 1 से जारी.....

वाहनों को खरीदने के लिए किस तरह लहकाया है, यह भला कौन नहीं जानता, नतीजा सामने है – पेट्रोलियम उत्पादों की मागों में बेहिसाब बढ़ोत्तरी। हालत यह है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पेट्रोलियम उत्पादों की मांग में बढ़ोत्तरी यदि दो प्रतिशत के हिसाब से हो रही है तो भारत में बढ़ोत्तरी की दर इसकी चार गुना यानी आठ प्रतिशत है।

कहने की जरूरत नहीं कि मांग की यह बढ़ोत्तरी नयी आर्थिक नीतियों की ही देन है। इस बढ़ती मांग के मुकाबले उत्पादन में बढ़ोत्तरी की दर लगातार कम होती गयी है। 1990–91 में तेल की घरेलू मांग को पूरा करने के लिए यदि 44 प्रतिशत का आयात करना पड़ता था तो आज 70 प्रतिशत आयात करना पड़ रहा है। मांग की बढ़ोत्तरी की मौजूदा दर को देखते हुए विशेषज्ञों का अनुमान है कि आने वाले दिनों में 80 प्रतिशत तक आयात करना पड़ सकता है। एक अनुमान के अनुसार चालू वित्त वर्ष में कच्चे तेल की कुल मांग बढ़कर 11 करोड़ टन तक हो जायेगी, जबकि मौजूदा समय में देश में सिर्फ 3.28 करोड़ टन का ही उत्पादन हो रहा है। जाहिर है, तेल उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता बढ़ने के बजाय रुख अधिक से अधिक परनिर्भरता का ही है। आने वाले समय में इस रुख के उलटने की कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि उदारीकरण की जिन नीतियों की वजह से यह हो रहा है उन्हें उलटने के बजाय उसे आगे ही बढ़ाने के लिए सरकार नये–नये कदम उठाने की तैयारी में है।

उदारीकरण–निजीकरण की नीतियों पर चलते हुए 1992 में तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने लुब्रिकेंट आयात को खुला कर दिया था। फिर 1993 में केरोसिन और रसोई गैस की निजी मार्केटिंग की अनुमति दी गयी। उसके बाद इसी डगर पर आगे बढ़ते हुए 20 नवम्बर 1997 को संयुक्त मोर्चा सरकार ने अन्तरमंत्रालयीय विशेषज्ञ तकनीकी ग्रुप की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए मार्च 2002 तक तेल के मामले में प्रशासित मूल्य प्रणाली को पूरी तरह समाप्त करने का निर्णय ले लिया, यानी तेल पर सब्सिडी पूरी तरह खत्म। मौजूदा सरकार ने 13 अगस्त 1998 को निजी एवं साझा कम्पनियों को तेल का आयात करने की इजाजत दे दी है। इसके बाद तेल शोधन में भी 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की छूट मिल गयी है। साफ है कि गाड़ी उस दिशा में तेजी से आगे बढ़ रही है, जब दो–तीन वर्षों में तेल की कीमतें पूरी तरह बाजार के हवाले हो जायेंगी।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में तेल उत्पादन और वितरण का निजीकरण–बाजारीकरण दुनिया के पैमाने पर हो चुका है। भीमाकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अधिकांश तेल उद्योग को अपने कब्जे में कर चुकी हैं। ये कम्पनियां 'ओपेक' देशों (तेल निर्यात करने वाले खाड़ी के देशों का संगठन) से मिलीभगत कर उत्पादन और मार्केटिंग को मनचाहे ढंग से नियंत्रित कर रही हैं। तेल बेचकर मुनाफा कमाने वाले देश उत्पादन बढ़ाने के लिए इसलिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि इससे अन्तराष्ट्रीय बाजार में कीमतें गिर जायेंगी। उत्पादन को कम कर और कीमतें बढ़ाकर मुनाफा कमाना ओपेक देशों की रणनीति है। तेल के इस खेल में साम्राज्यवादी मुल्कों की तो बन आयेगी, लेकिन भारत जैसे देश, जो अपनी जरूरत का अधिकांश तेल बाहर से मंगाते हैं, ऐसे संकटों से स्थायी रूप से घिरे रहेंगे, जिनके समाधान के लिए शासक मेहनतकश जनता को लगातार निचोड़ते रहेंगे।

मौजूदा समय में तेल की कीमतें बढ़ाने के पीछे बाजार और मुनाफे का यही खेल है। तेल की कीमतें बढ़ने के साथ ही रेल, बस के किराये–भाड़े में बढ़ोत्तरी होना लाजिमी है। साथ ही माल भाड़े की लागत बढ़ने से हर चीज मंहगी होगी। गरीब जनता चौतरफा मार की शिकार होगी। गरीबों की रसोई हर दिन अधिक से अधिक उदास होती जायेगी।

1947 के बाद पहली बार ऐसा हुआ है जब तेल की कीमत में बढ़ोत्तरी के बारे में दस दिन पहले ही घोषित कर दिया गया। अमूमन बजट की तरह तेल कीमतों में बढ़ोत्तरी को प्रकट तौर पर गोपनीय रखा जाता था। लेकिन, फिर भी जमाखोर खबर पा जाते थे और तेल की जमाखोरी कर मनमाना मुनाफा बटोरते थे। लेकिन, इस बार तो सरकार ने पूरी नंगई के साथ डंका बजाकर जमाखोरों को मुनाफा बटोरने का भरपूर मौका दे डाला।

अर्थव्यवस्था के बाजारीकरण से जैसे–जैसे नये–नये संकट सामने आ रहे हैं वैसे–वैसे सरकारें अधिक से अधिक बेशर्म होती जा रही हैं। संकट और मजबूरी का रोना रोना और बेहयाई के साथ जनता को निचोड़ना–दुहना उदारीकरण–निजीकरण के दौर की सभी सरकारों का प्रचलित तरीका बन चुका है।

जब तक देश में बाजार और मुनाफे पर टिकी पूंजीवादी व्यवस्था कायम रहेगी, तब तक तेल और ऊर्जा के संकट को दूर करना असंभव है। हमारे देश में तेल का कुल संचित भण्डार 26 अरब टन के लगभग है। अब तक बमुश्किल एक चौथाई यानी लगभग 6.8 अरब टन के भण्डार की पहचान हो सकी है और इसके मात्र 3.3 करोड़ हिस्से का ही उत्पादन हो पा रहा है। इसका कारण यह है कि देश के भीतर अपनी तेकनोलाजी के विकास के बजाय सरकारों ने विदेशी तकनोलाजी की नकल करने पर ही जोर दिया है। यह बाजार और मुनाफे के उसी खेल के कारण है, क्योंकि नयी तेकनोलाजी पर शोध के लिए खर्च करने के बजाय विदेशी तकनोलाजी की नकल करना सस्ता पड़ता है। अब निजीकरण– उदारीकरण के इस नये दौर में रही–सही सम्भावनाएं भी खत्म हो जायेंगी।

बाजार और मुनाफे के इसी खेल का नतीजा है कि तेल और कोयले के अतिरिक्त ऊर्जा के अन्य अधिक सुलभ प्राकृतिक स्रोतों के विकास की दिशा में सरकारें कोई ठोस प्रयास नहीं कर रही हैं। सौर ऊर्जा, पनबिजली, हवा से पनचक्की के सहारे पैदा होने वाली ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा, बायो ऊर्जा, कचरे से ऊर्जा पैदा करना आदि अनेक ऐसे वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत हैं, जिन पर यदि काम किया जाये तो तेल एवं ऊर्जा के मामले में देश न केवल आत्मनिर्भर हो सकता बल्कि अन्य देशों को भी ऊर्जा उपलब्ध करा सकता है। लेकिन, यह तभी हो सकता है जब बाजार और मुनाफे की व्यवस्था ध्वस्त हो और समाज की जरूरतों के आधार पर उत्पादन एवं वितरण का ताना–बाना खड़ा हो।

उत्पादन और वितरण के साथ–साथ निजी उपभोग को भी तभी नियंत्रित किया जा सकता है, जब सार्वजनिक परिवहन की मजबूत प्रणाली का विकास किया जाये और निजी ठाठ–बाट और विलासिता के प्रदर्शन पर आधारित जीवन शैली की जगह आवश्यकताओं और श्रम पर आधारित नयी सहज जीवन शैली विकसित की जाये। यह कपोल कल्पना नहीं, हकीकत है। अनेक भूतपूर्व समाजवादी देशों में, जहां मेहनतकशों की सत्ताएं कायम थीं, यह किया जा चुका है। ऊर्जा संकट और पर्यावरण संकट से मुक्त एक नयी जीवन शैली का नमूना दुनिया देख चुकी है। इन सत्ताओं के पतन के बाद आज भले ही इन उपलब्धियों को भी बिसरा दिया गया है।

मौजूदा तेल संकट पूंजीवादी व्यवस्था और उसे चलाने वालों की मजबूरी हो सकती है। लेकिन, उनकी मजबूरियों का बोझ हमेशा ढोते रहना मेहनतकशों की मजबूरी नहीं है। मेहनतकशों को इस मजबूरी का बोझ हमेशा के लिए उतार फेंकने की तैयारी करनी ही होगी। लोभ–लालच मुनाफे और प्रकृति का बेलगाम दोहन करने पर टिके इस जंगल राज का हमेशा–हमेशा के लिए खत्म करने और मेहनतकशों की नयी सुन्दर दुनियां बनाने के रास्ते पर चलना ही हमारी अकेली मजबूरी है। हमें इसी रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

जन मुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-आठ)

एशिया के क्षितिज पर नये सूर्य का रक्तिम आलोक-चीनी लोक जनवादी क्रान्ति की निर्णायक विजय और चीन लोक गणराज्य की स्थापना

चीन लोक गणराज्य की स्थापना की घोषणा करते हुए माओ त्से-तुङ, 1 अक्टूबर 1949.

(1) कुओमिंतांड के जरिये अमेरिका वास्तव में चीन को अपना नवउपनिवेश बना लेना और इसके बाजारों पर अपना वर्चस्व जमा लेना चाहता था। च्याङ काई-शेक चीन को साम्राज्यवादियों के हाथों गिरवी रख देने के लिए तैयार बैठा था। कुओमिंतांड के बैंकरों ने चीनी कुली मजदूरों के शोषण से भारी मुनाफा निचोड़ने की लम्बी चौड़ी स्कीमें तैयार कर ली थीं। अमेरिकी व्यापारियों ने चीन के विभिन्न इलाकों पर दांव लगाने के लिए हवाई दौरे शुरू कर दिये थे। लेकिन ये पूंजीवादी सपने तभी सच्चे हो सकते थे जब कम्युनिस्ट पराजित हो जायें। च्याङ ने अमेरिका ओ.एस.एस (जो बाद में सी.आई.ए. बना) से एक 'सीक्रेट पुलिस फोर्स' बनाया था जिसका 'संदिग्ध कम्युनिस्टों', 'कम्युनिस्ट-हमदर्दों' और सरकार के खिलाफ कुछ भी बोलने वाले उदारवादियों तक को मौत के घाट उतारना था। 1946-47 में कुओमिंतांड और अमेरिका के विरुद्ध पूरे चीन में कई प्रदर्शन और दंगे हुये। चीन के अमेरिकी उपनिवेश बन जाने के खतरे के विरुद्ध चीनी जनता संगठित होने लगी। एक चीनी लड़की के साथ चार अमेरिकी सैनिकों द्वारा दिन-दहाड़े बलात्कार के विरुद्ध चीनी शहरों में जबरदस्त अमेरिका-विरोधी प्रदर्शन भड़क उठे।

(2) माओ ने चीन में भू-स्वामित्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन के महान ऐतिहासिक मुद्दिम को नेतृत्व दिया। मुट्ठी भर सामंती भूस्वामियों का डेढ़ हजार से भी अधिक वर्षों से लगभग समूची भूमि पर मालिकाना कायम था और वे किसानों का बर्बर उत्पीड़न करते थे। माओ का मानना था कि सामंती व्यवस्था को उखाड़ फेंके बिना करोड़ों चीनी किसानों की बहुसंख्यक आबादी को मुक्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सिर्फ क्रान्तिकारी भूमि सुधार के आधार पर ही, क्रान्ति के समर्थन के लिए किसान आबादी को लामबंद किया जा सकता है। इस आधार पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने भूस्वामियों की जमीन जब्त करके किसानों में बांट देने के महान आन्दोलन की शुरुआत की।

जन सभाओं को नेतृत्व देने के लिए क्रान्तिकारियों की वर्क-टीमें भेजी गयीं जिनमें लोगों की वर्गीय हैसियत तय की

मुक्ति युद्ध के दौरान मुक्त क्षेत्र में जमींदार की भर्त्सना करते किसान (1946-49)

दुश्मन की आपूर्ति लाइन-काटने के लिए रेल-लाइनों को तोड़ती हुई जन-मिलिशिया.

चीन के मुक्त क्षेत्र में जमीन के पुनर्वितरण के लिए पैमाइश करते किसान (1946-49)

अमेरिकी सैनिकों द्वारा एक चीनी लड़की के बलात्कार के विरुद्ध प्रदर्शन, दिसंबर 1946.

जाती थी और इस हिसाब से यह तय किया जाता था कि किसको कितनी जमीन दी जाये। कुछ वर्षों के भीतर ही किसानों ने खुद ही यह तय करना सीख लिया कि कोई व्यक्ति शोषक है या शोषित, और यह कि भूमि और धन का न्यायपूर्ण पुनर्वितरण किस प्रकार किया जाये!

(3) 1946 के अंत तक ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों कम्युनिस्ट सेनाएं पूरीतरह से पीछे हटती जा रही हों। लेकिन माओ की दूरदर्शितापूर्ण सामरिक योजना यह थी कि इलाकों को छोड़कर और शहरों को खाली करके पीछे हट जाया जाये, ताकि फिर वापस आकर लड़ा जा सके और जीता जा सके। उनके मूल्यांकन और योजनाएं इतनी सही-सटीक होती थीं कि सैनिक कहते थे कि माओ दुश्मन से जो चाहते हैं, करवा लेते है। आगे बढती दुश्मन की सेनाएं दुश्मनाना रुख रखने वाली आबादी के इलाकों में भीतर तक धंसती चली जाती थी। फिर घेर ली जाती थी और पराजित कर दी जाती थीं। लाल सेना के सैनिक यह गीत गाते थे: "लोगों को बचाओ, जमीन छोड़ दो। जमीन फिर से छीनी जा सकती है। जमीन को बचाओ, लोगों को गवांओ। जमीन और लोग – दोनों को गवां देना पड़ेगा।"

(4) फरवरी, 1947 में 2,30,000 च्याङ ने येनान पर, जहां माओ का हेडक्वार्टर था, धावा बोल दिया। येनान खाली कर दिया गया और माओ के नेतृत्व में उनकी सेनाएं उत्तरी शेनसी प्रान्त में कूच कर गयीं। कुओमिंतांड के जासूसों की गतिविधियों के बारे में लाल सेना को स्थानीय किसानों से नियमित रिपोर्ट मिलती रहती थी। अपनी गतिविधियों को गुप्त रखने के बारे में भी पार्टी और लाल सेना पूरी तरह से किसानों पर भरोसा करती थी। माओ की टुकड़ी के मुख्य लक्षणों का बयान करने के लिए किसानों ने "छः बहुत – से" अभिव्यक्ति गढी थी; पिस्तौलें लिए हुए बहुत से लोग, बहुत से घुड़सवार, टेलीफोन के तारों के बहुत से बण्डल, बहुत सी महिला रेडियो आपरेटर, बहुत सी फ्लैशलाइटें और सामानों से लदे बहुत से जानवर। माओ कहते थे: आप गांव के लोगों की उम्दा विश्लेषण क्षमता देख सकते हैं....लेकिन हमें लोगों से गुप्तता

येनान को खाली करते मुक्ति सैनिक, आगेआगे चलते हुए माओ, 1947.

बरतने के लिए कहना होगा। यदि दुश्मन को इस तरह की जानकारी मिल जायेगी तो हम यहां और नहीं ठहर सकेंगे।

(5) माओ ने क्रान्तिकारी सामरिक सिद्धान्त को एक सर्वथा नये स्तर तक ऊंचा उठाया और उनकी सामरिक रणनीति विजयदायनी सिद्ध हुई। यह जनता की राजनीतिक लामबंदी पर आधारित **लोकयुद्ध** का रास्ता था। माओ के अंगरक्षक ने यह लिखा है कि वे लोगों से किस तरह एकता कायम करते थे और किस तरह उन पर भरोसा करते थे : "जब भी हम कूच करते हुए किसी नई जगह पहुंचते थे तो अध्यक्ष माओ गांव के कैडरों की मीटिंग बुलाते थे। कभी-कभी वे जिला कम्युनिस्ट पार्टी कमेटी के सेक्रेटरी को भी यह देखने के लिए बुलाते थे कि युद्ध की तैयारियां कैसी हैं। वे किसानों को अनाज छिपा देने और खेतों को एकदम खाली कर देने के लिए कहते थे ताकि दुश्मन किसी भी चीज का इस्तेमाल न कर सके। चाहे जहां कहीं भी हम रुकते थे, घोड़ों की पीठ से सामान उतारने के साथ ही बाहर निकल पड़ते थे, लोगों के बीच प्रचार कार्य करते थे और यह जानने की कोशिश करते थे कि उत्पादन और अजीविका की स्थित कैसी है, कितनी आबादी है, कितने परिवार है , कितनी जमीन पर खेती होती है और कितना टैक्स दिया जाता है- और लौटकर इसे रिपोर्ट करते थे।"

कुओमिंतांड सैनिकों को ट्रेनिंग देता अमेरिकी जनरल स्टिलवेल

(6) च्याङ काई-शेक ने माओ के पीछे 50,000 सैनिक भेजे। उस पूरे इलाके में जन मुक्ति सेना के सिर्फ 22,000 सिपाही थे। माओ ने च्याङ की सेना को टालमटोलू झड़पों में उलझाये रखा। कुओमिंतांड की फौजों को उन्होंने थका डला। इस बीच उनके शस्त्रागारों और रसद आपूर्ति डिपो पर भी जन मुक्ति सेना ने कब्जा कर लिया। कुओमिंतांड की टुकड़ियां गोल दायरे में चक्कर काटती रहीं ओर जनमुक्ति सेना एक एक करके उन्हें निवाले बनाती रहीं। लाल सैनिकों की छोटी-छोटी टुकड़िया कुओमिंतांड की फौजों को अपने पीछे बहकाकर संकरे दर्रों और बंद रास्तों में ले जाते थे और फिर घेर कर उनका खात्मा कर डालते थे। अंततः, अगस्त 1947 में थकी-हारी कुओमिंतांड सेनाओं पर माओ की टुकड़ियों ने फैसलाकुन धावा बोला और उन्हें पूरी तरह पराजित कर दिया।

(7) जुलाई 1947 में माओ ने कहा "जनता हमारी लोहे की दीवार है।" उन्होंने रणनीतिक प्रतिरक्षा से रणनीतिक आक्रमण के दौर में लोकयुद्ध के संक्रमण की घोषणा की। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अब निर्णायक विजय के लिए कदम उठाने को तैयार थी। दिसम्बर, 1947 तक च्याङ की फौजें रेल मार्गों से जुड़े शहरों के इर्द-गिर्द एक संकरी पट्टी मे सिमटकर रह गई थीं। जन मुक्ति सेना ने इन शहरों पर जब भारी हमला बोला, तो कुओमिंतांड सेनाएं एकदम असहाय महसूस करने लगीं।

25 मार्च, 1949 को माओ ने जब मुक्त पीकिङ में प्रवेश किया तो हर्षोन्मत्त भारी भीड़ ने उनका जबर्दस्त स्वागत

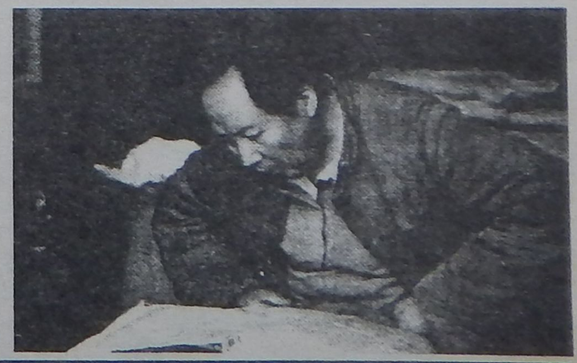

माओ, एक सैनिक नक्शे का अध्ययन करते हुए, येनान, 1947.

जन मुक्ति की अमर गाथा : चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग-आठ)

पेज 7 से जारी.....

पीकिङ में प्रवेश करती जन मुक्ति सेना, 1949.

भारतीय चिकित्सक डा० द्वारका नाथ शान्ताराम कोटनिस, जिनका दुश्मन के पृष्ठभाग में आठवीं राह सेना के घायल योद्धाओं की चिकित्सा करते हुए देहान्त हो गया।

किया। आगे यहीं नये चीन की राजधानी बननी थी। अगले कुछ महीनों के भीतर 5 लाख कुओमिंताङ फौजों को जनमुक्ति सेना ने करारी शिकस्त दी। 27 अप्रैल 1949 को च्याङ की राजधानी नानकिङ पर भी कब्जा कायम हो गया। कुछ ही महीनों के भीतर अन्य सभी बड़े शहरों पर भी जनमुक्ति सेना ने लाल झण्डा फहरा दिया। यहां–वहां भागता–छिपता च्याङ काई–शेक अंततः भागकर ताइवान चला गया। जब विजय आसन्न थी तब माओ ने कहा था: "चीनी क्रान्ति महान है, लेकिन क्रान्ति के बाद का रास्ता और अधिक लम्बा होगा, काम अधिक बड़ा होगा और अधिक कठिन होगा..... हम सिर्फ पुरानी दुनियां को नष्ट करने में ही नहीं, बल्कि नई का निर्माण करने में भी दक्ष हैं।"

(8) 1 अक्टूबर, 1949 को पीकिङ में, तिएन एन मेन चौक पर, भव्य मंच से माओ त्से–तुङ ने चीन लोक गणराज्य की स्थापना की घोषणा की। उन्होंने दसियों लाख लोगों के जन सागर को संबोधित किया। किसानों और मजदूरों को जिनके पास कल तक कुछ भी नहीं था, संबोधित करते हुए, उन्होने कहा "चीनी जनता उठ खड़ी हुई है.... अब फिर हमें कोई भी अपमानित नहीं करेगा...."

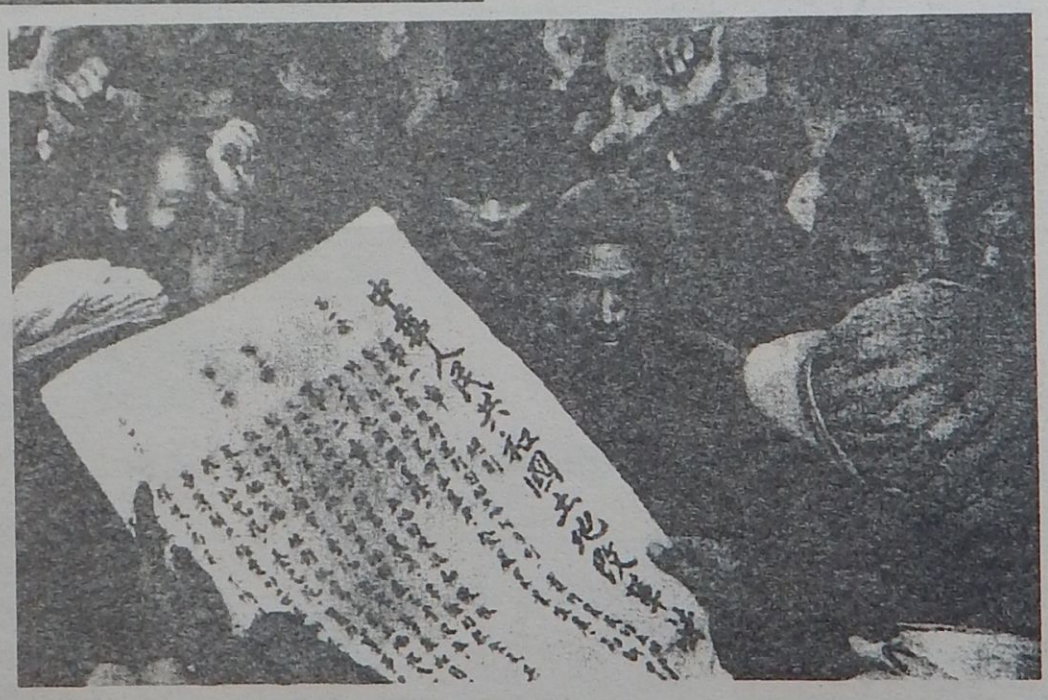

मुक्ति के तुरन्त बाद, "चीन की जनवादी गणतंत्र का भूमि सुधार कानून" का लागू किया जाना, जिससे जमींदारों के भूमि के मालिकाना अधिकार को छीन लिया गया।

(9) च्याङ काई–शेक को दुनिया के सबसे ताकतवर साम्राज्यवादी देश का समर्थन हासिल था। उसके पास 5 अरब डालर के अमेरिकी हथियार थे और चीन में अब तक की सवोत्तम साधन–सम्पन्न सेना थी। लेकिन वह फटेहाल, गरीब स्त्री–पुरूष किसानों–मजदूरों युवाओं–बच्चों की बेहद कम और पिछड़े हथियारों वाली सेना से पराजित हो गयी। यह सेना क्रान्तिकारी स्पिरिट से समृद्ध थी और कम्युनिस्ट पार्टी ने इसे राजनीतिक रूप से जागृत और गोलबंद किया था। गरीबों की इस अपढ़ निरक्षर सेना को क्रान्ति ने ही शिक्षित किया और उन्हें वर्ग चेतना दी। च्याङ की सेना भाड़े की, वेतनभोगी सेना थी जिसमें जबरिया भरती भी की गई थी ओर जो मुट्ठी भर शोषकों के हितों के लिए तथा अपने हितों

शेष पेज 9 पर.....

जनवरी 1949 में पेइफिङ शहर शान्तिपूर्ण ढ़ग से मुक्त हो गया। यह फोटो जनमुक्ति सेना के नगर–प्रवेश के अवसर पर लिया गया था।

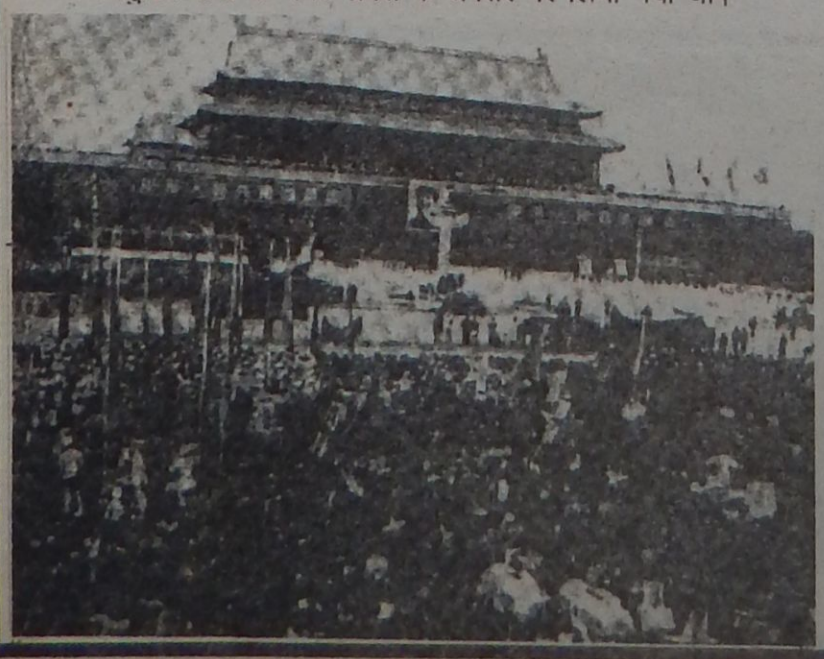

1948 में जनमुक्ति सेना ने चौतरफा जवाबी हमला शुरु कर दिया और उत्तर–पूर्व में भारी रणनीतिक महत्व के चिनचओ शहर को मुक्त करा लिया

एशिया के क्षितिज पर नये सूर्य का रक्तिम आलोक–चीनी लोक जनवादी क्रान्ति की निर्णायक विजय और चीन लोक गणराज्य की स्थापना

पेज 8 से जारी.....

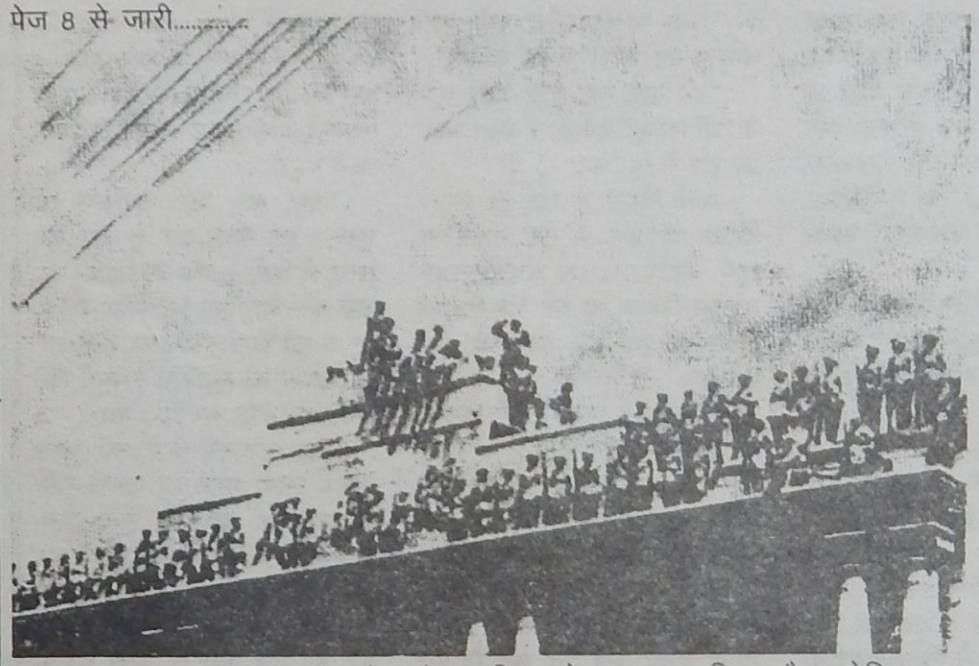

23 अप्रैल 1949 को जनमुक्ति सेना ने नानचिङ को मुक्त करा दिया और क्वोमिनताङ शासन के खात्मे का एंलान कर दिया। चित्र में जनमुक्ति सेना बोग्स राष्ट्रपति–भवन पर कब्जा करती हुई दिखाई दे रही है।

1 अक्टूबर 1949 को थ्येनआनमन द्वार के सामने चीन लोक गणराज्य की स्थापना का समारोह आयोजित हो रहा है।

के विरुद्ध लड़ रही थी जबकि लाल सेना स्वयं सेवकों की सेना थी जो अपनी मुक्ति के लिए लड़ रहे थे।

चीन अफीमचियों, भिखारियों, बीमारियों और भुखमरी का देश था। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी ने लोगो को मुक्ति का स्वप्न दिया अैर लड़ने का रास्ता बताया। माओ और उनकी पार्टी ने लोगों को इतिहास बनाने का काम अपने हाथ में लेने के लिए प्रेरित किया और विजय की मंजिल तक उनकी रहनुमाई की। अब उनके हाथों में एक पूरी तरह से नये समाज की सर्जना की ताकत थी और उन्हें बिना रुके इस काम में जुट जाना था।

अगले अंक में पढ़िये : मुक्त चीन समाजवाद की राह पर!

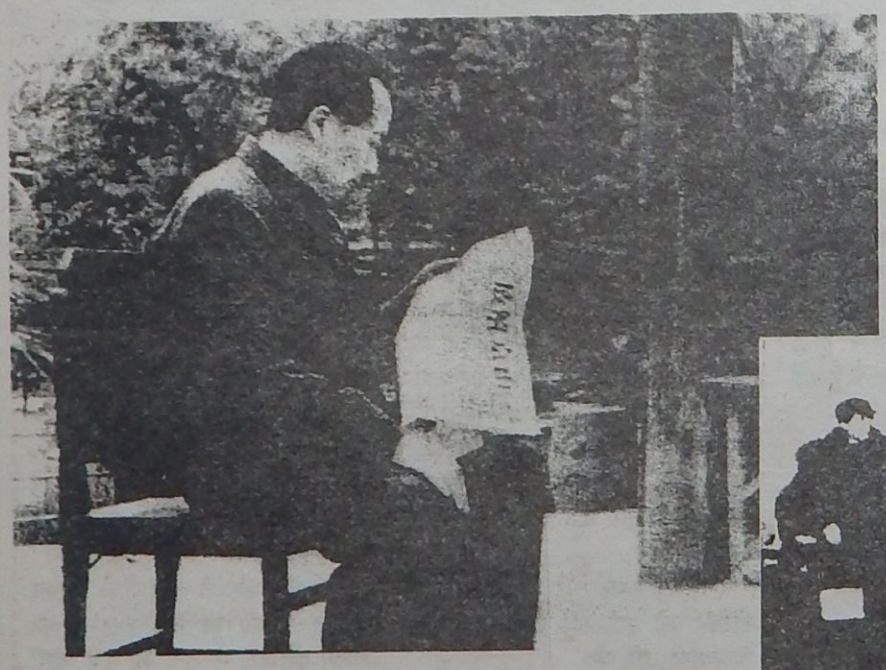

अप्रैल 1949 में क्वोमिनताङ सरकार की राजधानी नानचिङ की मुक्ति का समाचार पढ़ते हुए।

माओत्से-तुङ मार्च 1949 में पेइफिङ के शीय्वान हवाई अड्डे पर चीनी जन–मुक्ति सेना की एक टैंक यूनिट का निरीक्षण करते हुए।

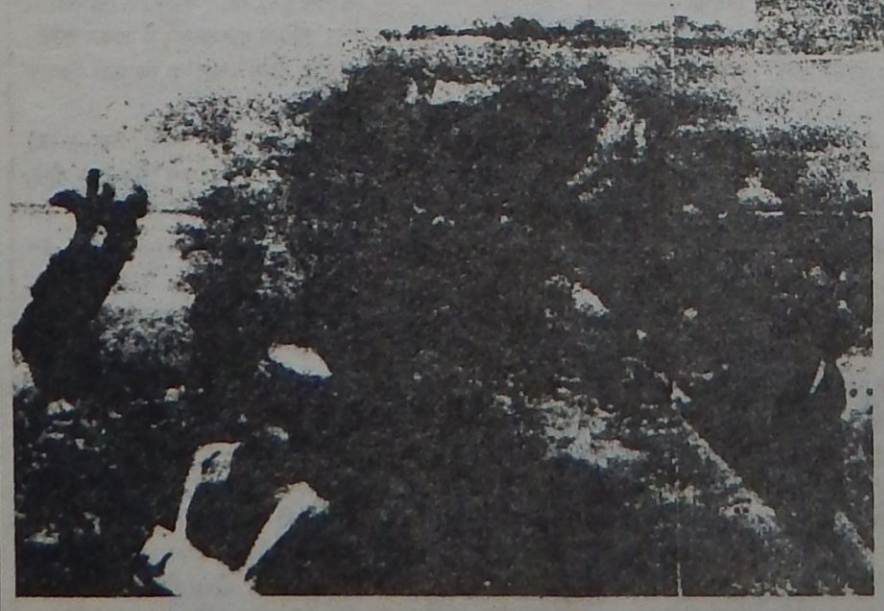

जनमुक्ति सेना के सामने कुओमिंताङ सैनिकों का आत्मसमर्पण, 1949.

जनमुक्ति सेना की तोपें

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी

जो बर्फीली ठंड में ठिठुरकर मरे नहीं

मक्सिम गोर्की

यह एक आम रिवाज हो गया है कि साल में एक बार बड़े दिन की कहानियों में कुछ एक छोटे लड़कों और लड़कियों को बर्फ-पाले में जामकर मार दिया जाता है। बड़े दिन की प्रतिष्ठित कहानी का बिचारा गरीब छोटा लड़का या बेचारी गरीब छोटी लड़की आम तौर से किसी प्रासाद की खिड़की के रास्ते शानदार दीवान-खाने में जगमग करते बड़े दिन के पेड़ को मुग्ध भाव से खड़ी देखती रहती है और इसके बाद बर्फ-पाले में जाम होकर मर जाती है, कडुवाहट और घोर निराशा में डूबी।

इन लेखकों के भले इरादों की मैं क़द्र करता हूं, बावजूद उस निर्ममता के, जिससे कि वे अपने नन्हे हीरों और हीरोइनों का टिकट कटाते हैं। मैं जानता हूं कि ये लेखक इन ग़रीब छोटे बच्चों को इसलिए जाम करते हैं कि छोटे धनी बच्चों को उनके अस्तित्व की याद दिलाई जा सके, लेकिन जहां तक मेरा सम्बंध है, इतने शुभ लक्ष्य तक के लिए किसी छोटे ग़रीब लड़के या छोटी ग़रीब लड़की को जाम करके मारना मेरे बूते से बाहर है। मैं खुद बर्फ़-पाले में जाम होकर कभी नहीं मरा और मैंने किसी छोटे ग़रीब लड़के या छोटी ग़रीब लड़की को कभी जाम होकर मरते नहीं देखा। इसलिए मुझे डर है कि जाम होकर मरने की वेदना का चित्रण करने का मेरा प्रयत्न – अगर मैंने ऐसा किया तो – कहीं हास्यास्पद बनकर न रह जाए। इसके अलावा यह कुछ बहुत ही अटपटा भी मालूम होता है कि एक जीवित प्राणी को केवल इसलिए मार दिया जाए कि एक दूसरे जीवित प्राणी को उसके अस्तित्व की याद दिलाई जा सके।

और यही कारण है कि जो मुझे एक ऐसे छोटे लड़के और एक ऐसी छोटी लड़की की कहानी कहना ज़्यादा पसन्द है जो बर्फ़-पाले में जाम होकर नहीं मरे।

बड़े दिन से ठीक पहली सांझ थी। छः बजे थे । हवा चल रही थी, बर्फ़ के बादल उड़ाती। ये ठंडे पारदर्शक बादल, झिलमिल चूरे की भांति हल्के और कमनीय, चारो तरफ उड़ते फिर रहे थे। वे राह-चलतों के चेहरों से टकराते, गालों में सुइयां सी चुभाते और घोड़ों के अयालों पर बरफ छिड़क जाते। घोड़े अपने सिरों को झटकते, जोरों से हिनहिनाते और जोर से अपने नथुनों से भाप के बादल छोड़ते। बिजली के तारों पर बर्फ ऐसे पड़ा था कि वे सफ़ेद रेशमी रस्सी की भांति मालूम होते। आसमान एकदम साफ और सितारों से अटा था। वे इतनी तेज़ी से चमक रहे थे कि ऐसा लगता था कि किसी ने, बड़े दिन के उपलक्ष्य में, उन्हें पालिश से रगड़कर चमका दिया हो, हालांकि यह एक असंभव सी बात थी।

सड़क पर लोगों की भारी चहल-पहल और शोरगुल बढ़ रहा था। बीच घोड़े थिरक रहे थे और लोग फुटपाथों पर चल रहे थे – कुछ उतावली में और कुछ फुरसत के साथ धीरे-धीरे। कुछ उतावली में इसलिए थे कि उन्हें चिन्ताओं और ज़िम्मेदारियों का अहसास था और उनके पास गर्म कोट नहीं थे, और फुरसत में इसलिए थे कि वे इन जिम्मेदारियों के बोझ से मुक्त थे और उनके पास गर्म यहां तक कि बालदार भी – कोट थे।

इन्हीं लोगों में से एक – जो चिन्ताओं से मुक्त था और सुन्दर कालर का कोट पहने था, सो भी ऐसा, जिसमें पेवन्द लगा था,– बहुत ही क़ायदे के साथ पटरी पर चल रहा था। उस सज्जन के ठीक पैरों के नीचे चिथड़ों और गूदड़ में लिपटी दो छोटी-छोटी गेंदें-सी लुढ़कती दिखाई दीं और साथ ही साथ दो नन्ही आवाजें सुनाई दीं –

"दया के सागर.." एक छोटी लड़की ने सुर छेड़ा।

"राजाओं के राजा.." एक छोटे लड़के का स्वर भी उसके साथ आ मिला।

"एक टुकड़ा रोटी के लिए दान करो,– कुछ तो दो, मालिक!"

"एक कोपेक रोटी के लिए। त्योहार के दिन के लिए !"

इस तरह दोनों ने अपनी प्रार्थना सम्पन्न की।

ये बच्चे ही इस कहानी के हीरो और हीरोइन थे – छोटे ग़रीब बच्चे। लड़के का नाम था मिश्का प्रिश्च और लड़की का कात्का रियाबाया।

उस महाशय ने रुकने की ज़हमत नहीं उठाई, इसलिए बच्चे बार-बार उनके पैरों के नीचे डुबकियां लगाते और उसके सामने आकर खड़े हो जाते। कात्का अत्यधिक आशा से दम साधे फुसफुसाकर कहती –"सिर्फ एक टुकड़ा," और मिश्का इस सज्जन की राह रोकने की कोशिश बाक़ी नहीं छोड़ता।

वह व्यक्ति जब इस सबसे ऊब उठा तो उसने अपने फ़रदार कोट का बटन खोलकर अपना बटुवा बाहर निकाला, नाक के पास बटुवे को फड़काते हुए एक सिक्का उसमें से बाहर निकाला फिर उस सिक्के को अपनी तरफ फैले नन्हें-नन्हें तथा अत्यन्त गन्दे हाथों में से एक में – डाल दिया।

चिथड़ों की वे दोनों गेंदें, पल भर में, इस सज्जन के रास्ते से हटकर एक फाटक पर जा रुकीं जहां वे कुछ देर तक एक दूसरे से चिपकी खड़ी रहीं और चुपचाप सड़क पर ऊपर-नीचे नज़र दौड़ाती रहीं।

"बूढ़ा शैतान, हमारी ओर कम्बख़्त ने देखा तक नहीं," छोटा ग़रीब लड़का कुत्सा से भरे विजयी अन्दाज़ में फुसफुसा उठा।

"वह मोड़ के उधर, गाड़ीवानों के यहां, गया है," लड़की ने बताया –"लेकिन मूज़ी ने दिया क्या?"

"दस कोपेक," मिश्का ने लापरवाही से कहा।

"तो अब कुल कितने हो गए?"

"सतहत्तर कोपेक।"

"ओह, इतना? तब तो आज जल्दी ही घर लौट चलेंगे,– क्यों, ठीक है न? बड़ी ठंड है।"

"ऐसी क्या जल्दी है," मिश्का ने उत्साह पर ठंडा पानी डालते हुए कहा –"और देखो, अधिक खुलकर काम न करना। अगर किसी दिन दारोग़ा ने पकड़ लिया तो सारे बाल कटवाकर तुझे कबूतरी बना देगा। अरे देखो, वह बजरा चला आ रहा है। चलो, चलें।"

यह बजरा एक मोटी स्त्री थी जो फ़र का कोट पहने थी। इससे पता चलता है कि मिश्का एक बहुत ही शैतान लड़का था, बहुत ही गंवार और अपने से बड़ों की इज़्जत न करनेवाला।

"दया की देवी..." वह मिनमिनाया।

"मां मरियम के नाम पर.." कात्का ने साथ दिया।

"छि:! कम्बख़्त तीन कोपेक से ज़्यादा नहीं उगल सकी, बूढ़ी चुड़ैल!" मिश्का ने उसे कोसा और फिर लपककर फाटक पर पहुंच गया।

हिम के बादल अब भी सड़क पर सपाटा लगा रहे थे और हवा अधिकाधिक तेज़ होती जा रही थी। टेलीग्राफ़ के तार भनभना रहे थे। हिम-गाड़ियों के रनर्स के नीचे बर्फ़ चरचरा रही थी। और सड़क के उस ओर, कहीं दूर से, किसी स्त्री के खिलखिलाने की गूंजदार आवाज़ आ रही थी।

"क्यों चची अनफ़िसा आज रात को फिर नशे में धुत्त नज़र आएगी न?" कात्का ने पूछा और अपने साथी के बदन से और अधिक चिपक गई।

"मालूम तो ऐसा ही होता है। और उसे रोक भी कौन सकता है? वह ज़रूर गड़गच्च होगी," मिश्का ने निश्चित स्वर में जवाब दिया।

हवा छतों पर से हिम समेटती सीटी की आवाज़ में बड़े दिन की धुन में गुनगुना रही थी। एक दरवाज़े की अरगल खुलने की खटाक से आवाज आई। फिर कांच के दरवाज़े की झनझनाहट सुनाई दी और किसी ने गहरी आवाज़ में पुकारा –

"गाड़ीवान!"

"चलो, घर चलें!" कात्का ने कहा।

"तुमने तो नाक में दम कर दिया," भरे हुए हृदय से मिश्का फूट पड़ा –"पता नहीं, घर जाने की तेरे सिर पर ऐसी क्या धुन सवार हुई है?"

"वहां इतना ठंडा नहीं है," कात्का ने संक्षेप में सफ़ाई देते हुए कहा –"कुछ तो गरमाई मिलेगी।"

"बड़ी गरमाई मिलेगी, – वाह!" मिश्का ने उसे कोंचा –"और जब वे जमा होकर तुझे नाच नचाएंगे तब...तब कैसा मालूम होगा? या फिर, जैसा कि पिछली बार हुआ था, अगर उन्होंने तेरे गले में ज़बर्दस्ती वोदका उड़ेलकर तुझे छत तक उछालना शुरू कर दिया तो? – घर? वाह!"

और उसने एक ऐसे आदमी के अन्दाज़ में अपने कंधों को सिकोड़ा जो जानता है कि वह क्या है। और जिसे अपनी बातों के सही होने में कोई शक व शुबहा नहीं है। कात्का ने बल-सा खाकर बरबस जमुहाई ली और फाटक के एक कोने में ढह गई।

"तुम बस चुप बनी रहो। अगर ठंड लगे तो बत्तीसी भींच लो और जी को कड़ा रखो। तब नहीं लगेगी। तुम और मैं, दोनों मिलकर, किसी दिन खूब मौज करेंगे। यह कौन बड़ी बात है। मैं केवल यह चाहता हूं कि..."

और उसने अपनी बात को अधूरा छोड़ दिया – यह इसलिए कि उसकी साथिन कौतुक में भर उठे। लेकिन वह, कौतुक का ज़रा-सा भी भाव दिखाए बिना, कसमसाकर और भी दोहरी हो गई। मिश्का ने, कुछ चिन्तित होकर, उसे चेताया –

"देखो कात्का, सोना नहीं। कहीं पाला न मार जाए। सुन रही हो न?"

"डरो नहीं, मुझे पाला-वाला कुछ भी नहीं मारेगा," कात्का ने कहा। उसके दांत ठंड से किटकिटा रहे थे।

अगर मिश्का न होता तो कात्का निश्चय ही पाले में जाम होकर मर जाती। लेकिन उस छोटे तलछटी लड़के का दृढ़ निश्चय था कि बड़े दिन के अवसर पर वह ऐसी भद्दी बात नहीं होने देगा।

"पसरो नहीं, उठकर बैठो। पसरना तो और भी बुरा है। घुटने टूटे नहीं गए। सीधे सतर रहने से आदमी बड़ा दिखता है और उसे ठंड नहीं दबोचती। बड़ों के सामने ठंड की मार नहीं बसाती। मिसाल के लिए घोड़ों को देखो। वे कभी पाले में जाम नहीं होते। आदमी घोड़ों से छोटे हैं, सो वे हमेशा जाम होते रहते हैं। बात मानो, उठ बैठो। पूरा एक रुबल हो जाए तो समझें कि हां, आज का दिन भी कुछ है।"

कात्का, जिसका सारा बदन कांप रहा था, उठ बैठी।

"सच, – भयानक ठंड है," वह फुसफुसाई।

और ठंड, वास्तव में, अत्यन्त भयानक हो चली थी। बर्फ़ के बादलों ने क्रमशः गहरे घने बगूलों का रूप धारण कर लिया था,– कहीं वे खम्भों की शक्ल में दिखाई पड़ रहे थे और कहीं लम्बी चादरों की शक्ल में, जिनमें हिम-कण हीरों की भांति जड़े थे। जब वे सड़क पर लैम्पों के ऊपर से मंडराते हुए निकलते या दुकानों के चमचमाते शो-केसों के सामने से गुज़रते तो बहुत ही खूबसूरत मालूम होते। वे इन्द्रधनुषी रंगों में जगमगाते और उनकी तेज़ ठंडी चमक आंखों में खुबने लगती।

लेकिन हमारे छोटे हीरो और छोटी हीरोइन की इस सारे सौन्दर्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

"ओ-हो!" अपने बिल में से थूथनी बाहर निकालते हुए मिश्का ने कहा – "यह तो पूरा रेबड़ चला आ रहा है। उठो कात्का, उन्हें पकड़ें।"

"दया के सागर..." तीर की भांति सड़क पर पहुंच कांपती आवाज़ में छोटी लड़की मिनमिनाई।

"कुछ देते जाओ, मालिक!" मिश्का ने चिरौरी की और फिर एकाएक, चिल्ला उठा – "भागो, कात्का, भागो!"

"भुतने! जरा हाथ तो लगने दो। फिर देखो, तुम्हारी क्यागत बनाता हूं, शैतान!" शहतीर की भांति लम्बे पुलिसमैन ने, जो अचानक पटरी पर प्रकट हो गया था, बमककर कहा।

लेकिन वे ग़ायब हो चुके थे। दो चिथड़ा-गेंदें तेज़ी से लुढ़ककर आंखों से ओझल हो गई थीं।

"ग़ायब हो गए, शैतान के बच्चे!" पुलिसमैन भुनभुनाया और सड़क पर नज़र डालते हुए भले स्वभाव से मुस्करा उठा।

और शैतान के बच्चे पत्ता तोड़ भाग रहे थे और हंस रहे थे। कात्का का पांव बार-बार उसके चिथड़ों में उलझ जाता था और वह गिर पड़ती थी।

"हाय राम, फिर गिर पड़ी!" अपने पांवों पर फिर खड़ी होने के लिए जूझते हुए वह कहती, पीछे की ओर मुड़कर भय से देखती, और उसके चेहरे पर बरबस हंसी खेलने लगती –" कहां गया वह मरदूद?"

मिश्का – हंसी से दोहरा हुआ – राह-चलतों से टकराता और इस अपराध के बदले, काफ़ी बार, उसे करारी झिड़कियां खानी पड़तीं।

"बस, बस, बहुत लुढ़कियां खा चुकी,– तुझे शैतान उठा ले जाए...ज़रा शक्ल तो देखो, – क्या बन गई है? बुद्धू कहीं की! अरे, फिर गिर पड़ी! बाप रे, तुम तो मुझे हंसाते-हंसाते मार डालोगी!"

कात्का की लुढ़कियों ने उसमें भारी उछाह का संचार कर दिया था।

"वह अब हमें कभी नहीं पकड़ सकता। ज़्यादा भागने की ज़रूरत नहीं। वह इतना बुरा नहीं। वह दूसरा वाला, जिसने सीटी बजाई थी। एक बार मैं भाग रहा था कि एकदम अचानक – खटाक! सीधे रात के सन्तरी के पेट में जा धंसा और मेरा सिर ज़ोरों से उसके डंडे से टकरा गया!"

"मुझे याद है। इतना बड़ा गुमटा पड़ गया था," कात्का ने कहा और एक बार फिर हंसते-हंसते दोहरी हो गई।

"बस करो अब। बहुत हंस ली," मिश्का ने भारी मुंह बनाकर उसे रोका –"और मैं जो कहता हूं, वह सुनो।"

दोनों, गम्भीर और चिन्तित मुद्रा बनाए, साथ-साथ चलने लगे।

"मैं वहां तुमसे झूठ बोला। दस नहीं, उस खूसट ने मेरे हाथ में बीस कोपेक ठोंसे थे। और उससे पहले भी मैं तुमसे झूठ बोला – इस डर से कि कहीं तुम फिर घर चलने की रट न लगाने लगो। आज का दिन बहुत अच्छा रहा। जानती हो, कितना मिला? एक रूबल और पांच कोपेक। है न बहुत!"

"और नहीं तो क्या?" कात्का ने सांस छोड़ी –" चाहो तो इससे जूते ख़रीद सकते हो – कबाड़ी बाज़ार में।"

"जूते,– ऊंह! वे तो मैं यों ही उड़ाकर तुम्हें दे सकता हूं! ज़रा ठहर जाओ। कितने ही दिनों से जूतों की एक जोड़ी पर मेरी नज़र है। मौक़ा लगने की देर है, साफ़ उड़ा लाऊंगा। लेकिन बात सुनो – चलो, अब ज़रा क़हवाख़ाने में चलें। क्यों, ठीक है न?"

"चची को फिर पता चल जाएगा और वह हमारी मरम्मत करेगी,– जैसा कि तब हुआ था," कात्का ने आशंका से कहा, लेकिन क़हवाख़ाने में जाकर गरमाने का मोह इतना प्रबल था कि उसे छिपाना मुश्किल था।

"हमारी मरम्मत करेगी? नहीं, इसकी नौबत नहीं आएगी। हम और तुम, दोनों, एक ऐसे क़हवाख़ाने में चलेंगे जहां एक भी पंछी यह न पहचान सके कि हम कौन हैं।"

"क्या सचमुच?" कात्का ने उछाह में भरकर कहा।

"अच्छा तो सुनो, हम क्या करेंगे। सबसे पहली और सबसे बड़ी बात तो यह है कि हम आधा पौंड सासेज लेंगे – आठ कोपेक के, फिर आधा पौंड सफ़ेद रोटी – पांच कोपेक की। तेरह कोपेक तो ये हुए। इसके बाद तीन-तीन कोपेक की दो मीठी रोटियां लेंगे,– छः कोपेक ये हुए। इस तरह उन्नीस कोपेक हो गए। फिर एक केतली चाय – छः कोपेक की। पूरे पच्चीस कोपेक,– ज़रा सोचो तो! और हमारे पास बाक़ी बच रहेंगे.."

शेष पेज 11 पर.....

श्रम मंत्री के दोमुहेंपन का कारण क्या है?

यह ग़ौरतलब बात है कि भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में मंत्रीगण अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर प्रायः भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभावों की चर्चा करते हैं जबकि देश के भीतर वे इसके गुण गाते नहीं अघाते।

भूतपूर्व ट्रेड यूनियन नेता और वर्तमान श्रम मंत्री सत्यनारायण जटिया भी पिछले दिनों जब अन्तरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में बाले रहे थे तो भूमण्डलीकरण से भारतीय जनता की तबाही की ख़ुलकर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने कहा कि देश की जनता बेरोजगारी, अपर्याप्त रोजगार और विस्थापन के रूप में भूमण्डलीकारण की कीमत चुका रही है। उन्होंने यह भी कहा कि भूमण्डलीकरण की वजह से ऐसे रोजगार बढ़ रहे हैं जिनमें कामगारों को ऐसी स्थितियों में रहना पड़ता है जिनमें न काम की सुरक्षा है, न आय की और न ही सामाजिक सुरक्षा।

सोचने की बात है कि यदि यह भारत सरकार का नज़रिया है तो फिर वह देश के भीतर भूमण्डलीकरण की प्रशंसा क्यों करती है और उदारीकरण–निजीकरण की नीतियों को हर कीमत पर लागू करने का दावा क्यों करती है ? केवल श्रम मंत्री ही नहीं, वित्त मंत्री भी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर तेज उदारीकरण के गम्भीर सामाजिक दुष्परिणामों की चर्चा करते हैं जबकि देश के भीतर वे ठीक उल्टी बात करते हैं। एक ओर तो ये मंत्रीगण भमण्डलीकरण के दुष्परिणामों की चर्चा करते हैं दूसरी ओर सरकार श्रम कानूनों में ऐसे संशोधन करना चाहती है जो देशी–विदेशी पूंजीपतियों के हक़ में हो। वह कामगारों के प्रति मालिकों की ज़िम्मेदारी कम करना चाहती है और श्रम कानूनों को इस तरह बदलना चाहती है जिससे कामगारों की छटनी आसान हो सके, नौकरी की सुरक्षा समाप्त हो जाये तथा ट्रेड यूनियनों की रही–सही ताकत भी निश्शेष हो जाये। सरकारी उपक्रमों को मिट्टी के मोल देशी–विदेशी पूंजीपतियों को बेचा जा रहा है, कृषि क्षेत्र में देशी–विदेशी पूंजी की लूट को सुगम बनाया जा रहा है और दूसरी ओर भूमण्डलीकरण की बुराइयां भी गिनाई जा रही हैं। इन दोमुहीं बातों के पीछे आखिरकार क्या मजबूरी है?

ग़ौर से देखने पर यह दोमुहीं बातें आश्चर्यजनक नहीं बल्कि स्वाभाविक लगती हैं । ये बातें भारतीय पूंजीपति वर्ग की दोहरी स्थिति और दुविधा को ही प्रतिविम्बित करती हैं। सरकार इसी शासक वर्ग की 'मैनेजिंग कमेटी' है जो इसी के हितों से प्रेरित होकर दोहरी भाषा बोलती है।

भारतीय पूंजीपति वर्ग इस देश में पूंजीवादी शोषण और उत्पादन की व्यवस्था को आगे जारी रखने के लिए और (इस व्यवस्था के) संकट एवं गतिरोध को, दूर टालने के लिए विदेशी पूंजी और तकनोलाजी की मदद लेने के लिए बाध्य है। राजकीय पूंजीवादी तंत्र (पब्लिक सेक्टर) की उपयोगिता उसके लिए समाप्त हो चुकी है और उसका निजीकरण करते हुए उसे विश्व बाजार के चौधरियों को भी हिस्सा देना ही है, अन्यथा विश्व बाजार में उसकी पहुंच असम्भव हो जायेगी। भारतीय पूंजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी देशों के बीच लगातार इस बात को लेकर खींचतान और मोलतोल चलती रहती है कि मुनाफे का ज्यादा से ज्यादा बड़ा हिस्सा कौन ले जाये। भारत जैसे अधिकांश पिछड़े देशों के पूंजीपतियों की चाहत होती है कि विश्वस्तर पर निचोड़े गये कुल मुनाफ़े का बड़ा भाग भले ही साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी ले जाये, अपने–अपने देशों के स्तर पर मुनाफ़े के बड़े भागीदार वे ही बने रहें। पिछड़े देशों के पूंजीपति साम्राज्यवादियों को प्रायः आगाह करते रहते हैं कि विदेशी लूट यदि एकदम खुले रूप में और देशी लूट की अपेक्षा बड़े एवं हावी रूप में दीखेगी तो जनाक्रोश तेजी से भड़क उठेगा। वे यह भी याद दिलाते हैं कि जनान्दोलनों से निपटना "कानून–व्यवस्था बनाये रखना" और पूंजीवादी शोषण की स्थितियों को सम्हालना भी उन्हीं की ज़िम्मेदारी है। इसके बदले में वे अपनी वाजिब 'फीस' की मांग करते है और यह चाहते हैं कि साम्राज्यवादी अपनी पूंजी की ताकत के सहारे कम से कम उन्हें लील न जायें। तीसरी दुनियां के पूंजीवादी राष्ट्र–राज्य आज इसी रूप में साम्राज्यवादी चौधरियों से देशी पूंजी की हितरक्षा में अपनी भूमिका निभाते हैं।

भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय मंचों पर गरीबों और मज़दूरों की बात करके साम्राज्यवादियों और उन्हीं की हितहोषिका अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियों से कुछ अधिक रियायत चाहती हैं, और इस तरह से "लूट के माल के बटवारे" में अपना 'शेयर' सुरक्षित रखने की सौदेबाज़ी करती है। अमीर देश श्रम के सख़्त मानदण्डों की मांग इसलिए कर रहे हैं तथा बालश्रम और पर्यावरण के प्रति अचानक इसीलिए चिंतित हो उठे हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि गरीब देशों के सस्ते श्रम के कारण इन देशों के पूंजीपतियों का माल विश्व बाजार में सस्ता हो जाता है। ऐसे में उपरोक्त किस्म की "क्रांतिकारी और मानवीय" बातें करके भारत सरकार अमीर देशों से सौदेबाजी की जमीन तैयार करती है। कि यदि तुम श्रम मानदण्डों की बात करोगे, बाल श्रम और पर्यावरण की चिंता की आड़ लोगे, तो हम सामाजिक सरोकारों और उदारीकरण के अमानवीय पक्ष की बात करेंगे।

इसका दूसरा पहलू यह भी है कि बुर्जुआ संसदीय राजनीति के तकाजों के चलते जिस तरह विपक्ष में बैठने वाली पूंजीवादी पार्टी को प्रायः उदारीकरण निजीकरण के विरोध में बोलना पडता है, उसी तरह सत्तारूढ़ दल को भी खासतौर पर तब उदारीकरण के दुष्परिणामों पर चिंता जाहिर करनी पड़ती है जब वे एकदम जाहिर हो जाते हैं या फिर जब उदारीकरण के किसी एजेण्डे पर निर्बाध रूप से अमल संभव नहीं होता है।

ताप्पर्य यह है कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत सरकार के प्रतिनिधि गरीबों–मज़दूरों के हितों की दुहाई महज सौदेबाजी के लिए देते हैं और जनता के सामने निजीकरण उदारीकरण की दुहाई इसलिए देते हैं क्योंकि उन्हें इन्हीं नीतियों को हर हाल में लागू करना है। श्रम मंत्री और वित्तमंत्री के दोमुहेपन का यही खुला "गुप्त रहस्य" है।

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी

पेज 10 से आगे.....

मिश्का अचकचाकर चुप हो गया। कात्का ने उसे भारी और शंका की नज़र से देखा।

"इतना ख़र्च कर डालोगे," उसने दबी आवाज़ में पूछा।

"बोलो नहीं, चुपचाप सुनो। यह ज़्यादा नहीं है। इसके अलावा आठ कोपेक की चीज़ें हम और खाएंगे। कुल तेंतीस कोपेक और जब यह सब करना ही है तो फिर कहना-सुनना क्या? बड़े दिन का त्योहार है,– क्यों, है न? सो हमारे पास बाक़ी बचेगा...अगर पच्चीस ख़र्च किए तो अस्सी कोपेक...और अगर तेंतीस खर्च किए तो सतहत्तर कोपेक – सात दस दस के और कुछ फुटकर बचेगा। देखो, कितना अधिक बच रहेगा? उस बूढ़ी खूसट को और क्या चाहिए? इतना काफ़ी है उस शैतान की खाला के लिए। चलो, चलें। जल्दी करो।"

हाथ में हाथ डाले, उछलते और रपटते, वे पटरी पर बढ़ चले। हिम-कण उड़ते हुए उनकी आंखों से टकराते और उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। जब-तब बर्फ़ का बादल ऊपर से उनपर झपटता और उन दोनों के छोटे आकारों को पारदर्शक चादर में लपेट लेता जिसे वे, भोजन और गरमाई की आशा में उमगे, तुरत तार-तार कर डालते।

"सुनो," कात्का ने – इतनी तेज़ी से चलने के कारण जिसकी सांस फूल आयी थी – हांफते हुए कहा – "तुम बुरा मानो चाहे भला, – अगर उसे मालूम हो गया तो मैं साफ़ कह दूंगी – यह सब तुम्हारी करतूत है...मैं पर्वाह नहीं करती – तुम हर बार भाग जाते हो, और अकेले मैं भुगतती हूं – वह मुझे सदा पकड़ लेती है और तुमसे कहीं ज़्यादा मारती है...समझ गए न? मैं सब कह दूंगी।"

"जाओ, जो जी में आए कह देना," मिश्का ने गरदन हिलाई – अगर वह मारेगी तो देखा जाएगा! – मैं सब भुगत लूंगा। जाओ...और तुम भी अपने मन की कर लो।"

मुंह से सीटी बजाता, अपना सिर पीछे की ओर फेंके, वीर-भावना में पगा वह चल रहा था। उसका चेहरा पतला था। उसकी आंखों में शैतानी भरी थी और उनमें, आम तौर से, ऐसा भाव झलकता था जो उसकी इस छोटी आयु से ज़रा भी मेल नहीं खाता था। उसकी नाक नुकीली और कुछ मुड़ी हुई थी।

"यह लो, क़हवाख़ाना आ गया। एक नहीं, दो। बोलो किसमें चला जाए?"

"छोटे वाले में। लेकिन आओ, पहले किराने की दुकान पर चलें।"

खाने की सारी चीज़ें ख़रीदने के बाद उन्होंने छोटे क़हवाख़ाने में प्रवेश किया।

क़हवाख़ाना धुंवें, भाप और एक तेज़ खट्टी गंध से भरा था आवारा भिखमंगे, गाड़ीवान और सैनिक अंधेरे में लिपट बैठे थे और अत्यन्त गन्दे वेटर मेज़ों के बीच मंडरा रहे थे। चीख-चिल्लाहट गाने और गालियों का बाज़ार गर्म था।

कोने में एक ख़ाली मेज़ पड़ी थी। मिश्का ने उसे भांपा और सपक सुई की भांति वहां पहुंच गया। उसने अपना कोट उतारकर रख दिया और इसके बाद काउंटर के पास पहुंचा। कात्का भी, लजीली नज़रों से इधर-उधर देखते हुए, अपना कोट उतारने लगी।

"क्यों, मिस्टर, चाय मिलेगी?" काउंटर को अपनी मुट्ठियों से धीरे-धीरे बजाते हुए मिश्का ने वहां बैठे आदमी से पूछा।

"चाय? मिलेगी क्यों नहीं? थोड़ा कष्ट करो। उधर जाकर कुछ गर्म पानी ले लो। और देखो, कोई चीज़ टूटे-फूटे नहीं। अगर तोड़-फोड़ की तो ऐसा सबक पढ़ाऊंगा कि याद रखोगे।"

लेकिन मिश्का पानी के लिए लपक चुका था।

दो मिनट बाद वह अपनी साथिन के साथ बैठा काग़ज़ में तम्बाकू लपेटकर भरे-पूरे अन्दाज़ में अपने लिए एक ताज़ा सिगरेट बना रहा था – उस गाड़ीवान की भांति, जो दिन में अच्छी मज़दूरी कर चुका हो। कात्का मुग्ध भाव से उसे देख रही थी। उसके हृदय में इस बात का रोब छाया था कि लोगों के बीच वह कितने बढ़िया और सहज ढंग से व्यवहार करता है। क़हवाख़ाने के इस कान-फोड़ होहल्ले के बीच वह सात जनम भी अपने आपको संभाले नहीं रख सकती और भी कुछ नहीं तो एक यही डर उसके सिर पर सवार रहता कि कोई क्षण जा रहा है जब उन्हें कान पकड़कर यहां से बाहर निकाल दिया जाएगा। लेकिन, चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, मिश्का के सामने वह अपने इन भावों और आशंकाओं को प्रकट नहीं होने दे सकती। सो वह अपने सन के रंग के बालों को थपथपाने और सीधे-सादे तथा अकृत्रिम अन्दाज़ में अपने इधर-उधर देखने लगी। ऐसा करने के प्रयास में उसके मैले गालों में रंग की बाढ़ उतर आई और अपनी अचकचाहट छिपाने के लिए अपनी नीली आंखों को उसने सिकोड़ लिया। इस बीच मिश्का, अहाते के चौकीदार सिगनेई के लहजे और शब्दों में, उसे पाठ पढ़ा रहा था। यह चौकीदार – उस समय भी जब कि वह नशे में धुत्त होता था – मिश्का को बहुत ही प्रभावशाली आदमी मालूम होता था और अभी-अभी चोरी के अपराध में तीन महीने की जेल काटकर आया था। सो उसके लहजे और शब्दों की बात करता मिश्का कात्का से कह रहा था –

"हां तो मिसाल के लिए, समझ लो कि तुम भीख मांगने निकली हो। अब भीख कैसे मांगी जाती है? केवल यह चिचियाते रहना कि दया करो, दया करो, बिल्कुल बेकार है। यह कोई तरीक़ा नहीं है। तुम्हें जो करना चाहिए वह यह कि उस मरदूद के पांवों से उलझ जाओ – इस तरह कि वह घबरा जाए और डरने लगे कि कहीं वह लड़खड़ाकर तुम्हारे ऊपर न गिर पड़े।"

"यह तो मैं कर लूंगी," कात्का ने दबे स्वर में सहमति प्रकट की।

"बहुत ठीक," उसके साथी ने सराहना से सिर हिलाते हुए कहा – "यही असली चीज़ है। अब, मिसाल के लिए, चची अनफ़िसा को लो। चची अनफ़िसा क्या है? सबसे पहली बात यह कि वह पियक्कड़ है। और इसके अलावा..."

और मिश्का ने, सराहनीय साहस के साथ, खुलकर बताया चची अनफ़िसा इसके अलावा और क्या है।

कात्का ने सिर हिलाकर चची के बारे में उसके मूल्यांकन से सहमति प्रकट की।

"तुम उसका कहना नहीं मानती। यह ठीक नहीं है। तुम्हे मिसाल के तौर पर, कहना चाहिए – 'मैं अच्छी लड़की बनूंगी, चची तुम्हारी बात का मैं ध्यान रखूंगी...' दूसरे शब्दों में यह कि उसको मुलायम मक्खन लगाती रहो और इसके बाद जो मन में आए करो यह सही तरीक़ा है।"

मिश्का चुप हो गया और रोबीले अन्दाज़ में अपना पेट खुजलाने लगा, जैसे कि अपना भाषण झाड़ने के बाद सिगनेई करता था। और जब उसे और कोई विषय नहीं सूझा तो उसने अपने सिर को हल्का-सा झटका दिया और बोला –

"हां तो अब खाना चाहिए।"

"आओ, शुरू करें," कात्का ने, जो कितनी ही देर से रोटी और सासेज की ओर भूखी आंखों से देख रही थी, सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

और सीलन की गंध भरे रोशनीविहीन इस क़हवाख़ाने के एक अंधेरे कोने में वे अपना सांझ का खाना खाने लगे। गंदे गीतों और भद्दी गालियों की आवाज़ पृष्ठ-संगीत का काम कर रही थी। दोनों बड़ी लगन से, अपनी पसन्द और नापसंद का परिचय देते और बीच-बीच में कुछ रुकते हुए, सच्चे रसज्ञों की भांति खा रहे थे। और अगर कात्का, शालीनता की भावना को भूलकर, लालच के मारे अपने मुंह में इतना बड़ा निवाला भर लेती कि उसके गाल कुप्पे से निकल आते और उसके दीदे बाहर झांकने लगते, तो शांत और स्थिर मिश्का दुलार के स्वर में कहता –

"ऐसी जल्दी क्या है, रानी साहिबा?"

और फिर, उस भारी-भरकम निवाले को निगलने की उतावली में, उसका दम-सा घुटने लगता।

और यही मेरी कहानी का अन्त है। बिना किसी क्षोभ या पछतावे के मैं इन बच्चों को बड़े दिन की यह रात बिताने के लिए अकेला छोड़ सकता हूं। और यह आप निश्चित समझिए कि उनके जाम होकर मरने का ख़तरा ज़रा भी नहीं है। वे अपने पूरे रंग में हैं। आख़िर उन्हें बर्फ़-पाले में जाम करके मारने से मेरा – या इस दुनिया का – क्या भला होगा?

मुझे यह एक बहुत ही बड़ी और भारी मूर्खता मालूम होती है कि बच्चों को पाले में जाम करके मारा जाए – ख़ास तौर से उस हालत में, जब कि वे निश्चय ही किसी न किसी दिन मरेंगे, लेकिन इससे कहीं अधिक सीधे और साधारण तरीक़े से।

(1894)

पंजीकरण संख्या - 71980/99

तराई के मजदूर आन्दोलन को कमजोर करने की कोशिश

व्यापक एकजुटता से ही मुकाबला संभव

बिगुल संवाददाता

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। इन दिनों तराई क्षेत्रों के मज़दूरों पर संकट के नये बादल मडराने लगे है। कारखानेदारों की दमनकारी नीतियों से त्रस्त क्षेत्र के मज़दूर आन्दोलन के सामने नयी चुनौतियां आ उपस्थित हुई हैं।

इस क्षेत्र के सबसे जुझारु और किसी भी मज़दूर आन्दोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सेदारी निभाने वाले **'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन'** को खत्म करने के लिए प्रबन्धकों नें जबरदस्त हमला बोल दिया है। यूनियन अध्यक्ष आर.एस रावत और एक अन्य वरिष्ठ मजदूर कठैत को एक प्रबन्धक की कथित पिटाई के आरोप में कारखाने से निष्कासित कर दिया गया है। दूसरी तरफ इलाके के एक अन्य महत्वपूर्ण कारखाने **'आनन्द निशिकावा लि०'** को प्रबन्ध तन्त्र मजदूरों का त्रिवर्षीय वेतन समझौते करने की जगह साजिशाना तरीके से उनकी एकता को तोड़ने और करखाने में निरंकुशता बढ़ाने का ही काम कर रहा है। दरअसल रुद्रपुर और इर्द–गिर्द के इलाके में ये ही दो कारखाने हैं जहां न केवल मज़दूरों के आने संगठन हैं बल्कि वे एकताबद्ध है।

अपनी जुझारु और संग्रामी एकता के कारण जनरेटर बनाने वाले जापनी कारखाने **'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स'** के मज़दूरों पूरे इलाके के कारखानेदारों की आंख की किरकिरी बने हुए हैं। यह वह कारखाना है जहां के कैंजुअल ठेका मज़दूरों से लेकर नियमित मजदूरों तक की जबर्दस्त एकता एक मिसाल है। अपने वर्गीय एकजुटता के कारण वे क्षेत्र के हर प्रकार के न्यायसंगत मजदूर आन्दोलन में अपनी भागीदारी निभाते रहे हैं। जाहिरा तौर पर वे सभी कारखाना मालिकों के लिए एक चुनौती रहे हैं। यही कारण है कि वे यहां के कारखानेदारों की संस्था 'गढवाल एण्ड कुमाऊं चैम्बर आफ इण्डस्ट्रीज एण्ड कामर्स' के भी समय बा समय निशाना बनते रहे हैं। होण्डा प्रबन्धतन्त्र भी इनकी एकता को नेश्तनाबूत करने की साजिशें रचता रहा है। उसने बड़े ही साजिशाना तरीके से एक वर्ष के भीतर वह स्थिति पैदा कर दी जिससे एक दशक के संघर्षों पर पानी फिर जाये।

स्थिति चिन्ताजनक तबसे हो गयी थी जब विगत वर्ष तीन माह के लम्बे संघर्ष के बाद यहां के मज़दूर यूनियन और प्रबन्धतन्त्र के बीच समझौता हुआ। उस वक्त होण्डा श्रमिकों को अपने जुझारु संघर्ष के दम पर आर्थिक तौर पर तो जबर्दस्त लाभ हुआ, परन्तु प्रबन्धकों की उस साजिश को नहीं समझ सकी जिसके परिणाम भविष्य में घातक साबित होते। राजनीतिक तौर पर पराजय की यह पहली मंजिल थी। उस वक्त नियमित और दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों की एकता में दरार पड़ गयी। उसके बाद से प्रबन्धतन्त्र एक के बाद एक, अपनी तिकड़में बड़े ही शातिराना तरीके से रचता रहा और यूनियन दूसरे उलझावों में फंसी रही। अब स्थिति बेहद संकटपर्ण स्थिति में पहुंच चुकी है।

दूसरी तरफ, **'आनन्द निशिकावा'** का प्रबन्धतन्त्र भी वहां के मज़दूरों की मजबूत एकता को तोड़ने की कुत्सित सजिशों में लम्बे समय से लगा रहा है। लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व यहां चले मज़दूर आन्दोलन की समाप्ति के समय से ही प्रबन्धकों ने उग्र दमनात्मक रूख अख्तियार कर लिया था। उधर यूनियन नेतृत्व अपरिपक्व राजनीतिक समझदारी और धुंधले वर्गीयदृष्टि के कारण, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। परिणामतः प्रबन्धतन्त्र, मजदूरों के बोनस का एक बड़ा हिस्सा हड़प गया। यही नहीं, पिछले आन्दोलन के समय से ही निलम्बित यूनियन महामंत्री बी.सी.शर्मा को कारखाने से निष्कासित कर दिया गया। और अब, जबकि मज़दूर त्रिवर्षीय वेतन समझौते के लिए प्रयासरत है, तो प्रबन्धकों द्वारा उनकी एकता को तोड़ने की साजिशें रची जा रही हैं यूनियन पर उत्पादकता और ज्यादा बढ़ाने के लिए दबाव डाला जा रहा है। यहां यूनियन द्वारा समझौते का मांगपत्रक दिये लगभग छह माह व्यतीत हो जाने के बावजूद, इस मुद्दे पर प्रबन्धतन्त्र खामोश है और श्रम विभाग तथा जिला प्रशासन का उसे मौन समर्थन प्राप्त है। स्थिति लगातार विस्फोटक बनी हुई है।

ऐसी विकट परिस्थिति में, इन कारखानों के न केवल नियमित अपितु दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों को भी आपसी मतभेदों को भुलाकर अपने संघर्षपूर्ण एकता को फिर से बहाल करना होगा। अपने वर्गीय दृष्टि को तीक्ष्ण करते हुये उन्हें संघर्ष की नयी रणनीति बनानी होगी। आज देश के हालात बेहद कठिन हैं। छंटनी–तालाबन्दी का दौर चल रहा है। मज़दूर विरोधी, बेहद खतरनाक नया श्रम कानून लागू होने जा रहा है। शासक वर्ग का दमनतंत्र तेज हो चुका है सत्ताधारियों की मज़दूर विरोधी नीतियां खुलकर सामने आ चुकी है। ऐसे में मज़दूरों को अपनी छोटी सी भी चूक की भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है।

ए.एस.पी. के मजदूरों का संघर्ष जारी है

गजरौला (ज्योतिबा फुले नगर) 8 अक्टूबर। यहां स्थित आनन्द सिलिंग प्रोडक्ट्स लि० (ए.एस.पी.) के मज़दूरों का त्रिवर्षीय वेतन समझौते के लिए संघर्ष जारी है। यहां के हड़ताली मजदूरों के खिलाफ, जहां एक तरफ क्षेत्र के कारखानेदारों ने मिलकर हमला बोल दिया है, वहीं क्षेत्र के मजदूर भी अपनी वर्गीय एकता मजबूत करते हुये अपना संघर्ष जारी रखे हुये हैं। 'संयुक्त मजदूर संघर्ष समिति' के बैनर तले मज़दूरों ने अपनी जबर्दस्त एकता का प्रदर्शन किया है।

प्रबन्धतन्त्र जोड़तोड़ और आन्दोलन तोड़ने की कुत्सित साजिशों के अपने चिरपरिचित हथकण्डों को लगातार आजमा रहा है। जिला प्रशासन और श्रम विभाग का उसे समर्थन प्राप्त है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप क्षेत्र के मज़दूरों में व्यापक आक्रोश व्याप्त है। शानदार बात यह है कि जिस गज़रौला औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर अपने हक के लिए आवाज उठाने से भी डरते थे, वहां अब तक क्षेत्र के कई कारखानों में मज़दूरों के अपने संगठन बन चुके हैं। यहां के निरंकुश और दमनकारी प्रबन्धकों के लिए यह एक बड़ी बात है और वे हर कीमत पर इस एकता और संघर्ष को कुचलने पर आमादा हैं। इधर ए.एस.पी. के मजदूरो ने भी अन्तिम दम तक संघर्ष के लिए कमर कस लिया है।

ऐसी स्थिति में अन्य कारखाने के मज़दूर साथियों को अपनी एकता को और मजबूत बनाते हुये संघर्ष जारी रखना होगा। अपने संघर्षों को आगे बढ़ाते हुये अपनी मुक्ति के अन्तिम संघर्षों से जोड़ना होगा। इसके लिए उन्हें क्रान्तिकारी विचारधारा से अपने आप को लैस करना होगा।

यह बात ध्यान रखने की है कि आज के कठिन दौर में एक कारखाने के मज़दूर अकेले–अकेले किसी भी संघर्षों को जीत की अन्तिम मंजिल तक नहीं पहुंचा सकते। एक जुझारु क्रान्तिकारी नेतृत्व में, व्यापक एकजुटता और सूझबूझ भरी रणनीति से ही वेतन समझौते जैसी छोटी लड़ाइयां जीती जा सकती हैं। अपने छोटे–छोटे संघर्षों को ही आगे बढ़ाकर व्यापक मज़दूर आन्दोलन का हिस्सा बनाना होगा। तभी निरंकुश और दमनकारी कारखानेदारों से जूझा जा सकता है। और तभी पूंजीवादी लूटतंत्र का समूल नाश संभव है।

सूचना प्रौद्योगिकी का मिथक और आम जनजीवन का यथार्थ

पेज 1 से जारी.....

माइक्रोसाफ्ट कारपोरेशन के अध्यक्ष हैं और दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति हैं। वैसे तथ्य यह भी है कि बिल गेट्स पर धंधे में अपना वर्चस्व जमाये रखने के लिए प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ दंद–फंद करने के इलजाम हैं और अपनी कंपनी के विखण्डन के अदालती आदेश के खिलाफ फिलहाल उन्होंने अपील कर रखी है।

बिल गेट्स फिलहाल विश्वस्तर पर तकनीकी स्पर्द्धा से घिरे हैं। मार्च के शुरु में माइक्रोसाफ्ट के खिलाफ अदालती फैसला आने के बाद उसके शेयर जो आधें मुंह गिरे थे, उसके बाद उनमें वह उछाल फिर्‌आ ही नही पाया है जिसपर वित्तीय महाप्रभु मुग्ध रहा करते थे।

बहरहाल, भारत आकर बिल गेट्स का तनाव काफी हल्का हुआ। वे यहां से सिडनी ओलम्पिक देखने जा रहे थे, पर उनका पर्याप्त मनोरंजन यहीं हो गया। उनसे दिग्विजय सिंह , चन्द्रबाबू नायडू, एस.एम. कृष्णा, ओम प्रकाश चौटाला, राम प्रकाश गुप्ता, प्रकाश सिंह बादल, केशुभाई पटेल, विलास राव देशमुख, शीला दीक्षित, अशोक गहलोत जैसे मुख्यमंत्रियों के अतिरिक्त केरल की "वामपंथी" सरकार के शिक्षा मंत्री पी.जे.जोजेफ ने भी भेंट की। सभी मुख्य मंत्री प्रशासन और शिक्षा के क्षेत्र में सूचना–प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल को लेकर उत्कण्ठित–उत्तेजित थे। सभी 'बिल साब' से अपने–अपने राज्य में ज्यादा से ज्यादा डालर निवेश करा लेना चाहते थे। 'बिल साब' ने सबकी सुनी, पर बड़ी चालाकी से कोई एक पंसदीदा राज्य चुनने से बच निकले। उन्होंने सबको आश्वासन दिया और भारत के अपने विकास केन्द्र में 225 करोड़ रुपये के निवेश की, स्थानीय कम्प्यूटर कम्पनियों के साथ गठबंधन करने की और क्षेत्रीय भाषाओं में साफ्टवेयर विकसित करने की घोषणा की। सभी खुश हुए। भविष्य के लिए उम्मीदें बंधी।

लेकिन बिल गेट्स दरअसल किनके लिए उम्मीदों के दिये जला गये हैं? वास्तविकता यह है कि सूचना–प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में जो रोजगार पैदा हो रहे हैं, उनका लाभ सिर्फ ऊपर की बीस फीसदी आबादी के घरों के लोग ही उठा सकते हैं क्योंकि मंहगी कम्प्यूटर शिक्षा उन्हीं को नसीब है। औसत मध्यवर्गीय घर का लड़का तो ज्यादा से ज्यादा डी.टी.पी. या एकाउण्टिंग जैसा कोई सामान्य प्रशिक्षण कोर्स करके, जैसे–तैसे पेट पालने का ही काम कर सकता है। दूसरी बात यह है कि कम्प्यूटरों का इस्तेमाल, विकसित देशों के अतिरिक्त भारत जैसे पिछड़े देश में भी, उत्पादन और वितरण की ठोस प्रक्रियाओं के बजाय ज्यादातर मनोरंजन उद्योग में, या सिर्फ कार्यादेश और मुद्रा के आदान–प्रदान से जुड़ी सीमित गतिविधियों में ही हो रहा है। उत्पादन के बजाय बैंकों, कार्यालयों आदि में कम्प्यूटरीकरण की प्रक्रिया अधिक तेज़ी हो रही है। और कुल मिलाकर जितने रोजगार सृजित हो रहे है, उससे अधिक लोग बेकार हो रहे हैं, उत्पादन की प्रक्रिया में भी जिस हद तक कम्प्यूटर आ रहे हैं, वहां भी यही हो रहा है। एक कम्प्यूटर दक्ष व्यक्ति दस या बीस परम्परागत दक्ष लोगों को बेकार कर दे रहा है।

निश्चय ही, कम्प्यूटर या किसी भी आधुनिक तकनोलाजी का निरपेक्ष रूप में विरोध करने का प्रश्न नहीं है। लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में, जहां उत्पादन का लक्ष्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होकर मुनाफा

"बिल गामा आये हैं, खूब खिलौने लायें हैं"

कमाना होता है, वहां उन्नत तकनोलाजी का इस्तेमाल श्रम शक्ति के बड़े हिस्से को बेकार करके उसकी मोल–तोल की ताकत को घटा देने, श्रम–बाजार में मंदी पैदा कर देने और बहुत छोटी सी श्रम शक्ति से अतिलाभ निचोड़ने मात्र के उद्देश्य से ही किया जाता है। यदि सामाजिक– राजनीतिक व्यवस्था ऐसी हो जिसमें सामाजिक आवश्यकता के लिए उत्पादन हो और उसका ज्यादा से ज्यादा समतापूर्ण वितरण का लक्ष्य हो, तो ऐसी नियोजित व्यवस्था में, उन्नत तकनोलाजी के इस्तेमाल से किसी एक क्षेत्र विशेष से जो श्रमशक्ति फाजिल हो जायेगी, उसे सामाजिक विकास के अन्य क्षेत्रों में लगाया जा सकेगा। साथ ही भारी कामों के बोझ को ज्यादा से ज्यादा हल्का बनाया जा सकेगा, काम के घण्टों को ज्यादा से ज्यादा कम किया जा सकेगा और सामाजिक विकास के तथा उत्पादन सम्बन्धी, नये–नये कार्यो को हाथ में लिया जा सकेगा। लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में ठीक इसके उल्टा होता है। कम्प्यूटर या कोई भी उन्नत मशीन आती है तो रोजगार सिकुड़ जाते हैं और शोषण तथा बहुसंख्यक जनता की बदहाली बढ़ जाती है।

इससे भी मुख्य बात यह है कि भारत जैसे देश में जहां बहुसंख्यक आबादी को बिजली, रहने लायक घर, शिक्षा और दवा–इलाज की सुविधा तो दूर, पीने का शुद्ध पानी तक नसीब नहीं है, वहां उन्नत से उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी अपनाने और संचार–सुविधाओं की तरक्की की होड़ केवल मुट्ठीभर पूंजीपति घरानों से और ज्यादा से ज्यादा 20 फीसदी मध्यवर्गीय लोगों के बाज़ार से ही सम्बन्ध रखती है, कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी क्षेत्र में जो भी पूंजी लग रही है वह सामाजिक रूप से मूलतः अनुत्पादक किस्म की है और उत्पादन की ठोस प्रक्रिया से ज्यादातर विलग है। भारत में कम्प्यूटर का इस्तेमाल ज्यादातर मुद्रा बाजार में, मनोरंजन उद्योग में और व्यापारिक एवं प्रशासकीय कार्यों में ही हो रहा है। जहां वास्तविक विकास का आधार ही मौजूद न हो, वहां कम्प्यूटर का यह इस्तेमाल एकतरह की सामाजिक रुग्णता, ज्ञान की इजारेदारी और सम्पत्तिशील लोगों के वर्चस्व को बढ़ाने और मजबूत बनाने का ही काम करेगी।

कम्प्यूटर और सूचना–प्रौद्योगिकी के सारे शोरगुल और चकाचौंध की यही हकीकत है। शेष आम मध्यवर्गीय आदमी के लिए यह सब मुंगेरी लाल के हसीन सपनों से अधिक कुछ भी नहीं हैं।

बहरहाल, भारत में बिल गेट्स को काफी अच्छा लगा। यहां उन्हें माइक्रोसाफ्ट के साफ्टवेयर–उत्पादों का लगातार बढ़ता हुआ बाजार तो नजर आ ही रहा है, साथ ही सूचना–प्रौद्योगिकी के पेशेवर लोगों की भी एक भारी फौज दीख रही है, जिनकी श्रम–शक्ति अमेरिका या अन्य विकसित देशों के मुकाबले काफी सस्ती है। ऐसे लोंगो को प्रशिक्षित करके भी माइक्रोसाफ्ट काफी अच्छी कमाई करता है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि अमेरिका के बाद सबसे अधिक माइक्रोसाफ्ट–प्रशिक्षित लोग भारतीय ही हैं। आगे बिल गेट्स की रणनीति अपनी कम्पनी के साफ्टवेयर को नेट से जोड़कर सूचनाओं को पी सी और टीवी से लेकर हाथ में रखे उपकरणों तक उपलब्ध कराने की है और भारतीय मध्यवर्ग में वे इसकी भी बहुत अच्छी बाजार सम्भावनाएं देख रहें हैं।

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। संपादक : डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता : द्वारा ओ. पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।